THE BOOK WAS DRENCHED

UNIVERSAL LIBRARY
OU_178941
UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83.1 S36 Pu Accession No. H 618

Author सुदर्शन

Title पुष्पलता

This book should be returned on or before the date last marked below.

दो बातें

पहली बात—सन् १९१९

(पहले संस्करणसे)

साहित्यमें नाटकका आसन सबसे ऊँचा है। इसके बाद उपन्यासका र्जा है। उपन्यास एक शिक्षा है, जिसके चारों ओर बहुतसे पात्र घूमते हते हैं, और बहुत समय तक घूमते रहते हैं। डेढ़-दोसौ पृष्ठोंकी पुस्तक ढ़नेके पश्चात् एक बात हस्तगत होती है कि बुराईका फ़ल बुराई है, लाईका परिणाम विजय और यश है, बलवानोंसे सताये हुए निर्ब-का प्रतिकार प्रकृति लेती है, इत्यादि। मगर उपन्यास समय बहुत गता है, और वर्त्तमान युग कार्य्यपरताका युग है। इसलिए सभ्य जातियों या देशोंकी रुचि ऐसी गल्पोंकी ओर बढ़ रही है, जो छोटी हों, बनावटसे हेत हों, और शिक्षाप्रद हों।

यूरोपमें तो गल्पोंकी प्रथा अब इतनी अधिक हो गई है कि, बड़े बड़े खक कठिन विषयोंको गल्पोंमें ही सिद्ध करनेका प्रयत्न करते हैं।

इंग्लिस्तानके सुप्रसिद्ध गल्प-लेखक मिस्टर (Sonn) सनका वचन है गल्प-रुचि जातीय उन्नतिका चिह्न है। किसी साहित्यमें तब तक ालित्य, सुन्दरता, तथा मनोहरता नहीं आ सकती, जब तक उसमें गल्पोंका कास न हो।

हिन्दी भाषाका साहित्य जिस शीघ्रतासे बढ़ रहा है, उसे देखकर देश-तैषी ...द हो रहे हैं। परंतु शोक है कि स्वतंत्र पुस्तकोंका इसमें अतिशय ाव है। अनुमान किया गया है कि हिन्दीमें जो नवीन पुस्तकें प्रकाशित ती हैं, ...में प्रतिशित ९५ बंगाली पुस्तकोंका अनुवाद है। मेरे एक मित्रने

एक बार कहा था कि, हिन्दीके प्रकाशक बंगाली साहित्यपर इतने मुग्ध हो रहे हैं कि वे बंगाली पुस्तकोंके अनुवादके बिना और कोई पुस्तक पसन्द ही नहीं करते। यदि तुम उनके पास कोई स्वतंत्रलिखित पुस्तक भेज दो, तो सम्भव है कि वे उसे छापना स्वीकार न करें। परंतु यह असम्भव है कि यदि उसी पर 'बंगलासे अनुदित' लिखकर भेज दो, और उसे सहर्ष पसन्द न कर लिया जाय।

परन्तु अब अवस्था बदल गई है और पाठकोंमें स्वतंत्र पुस्तकोंके पढ़नेकी रुचि बढ़ रही है।

यह सच है कि गल्पों या कहानियोंके लिए हिन्दी-प्रेमी उत्सुक हैं; परंतु इसके साथ यह भी सत्य है कि, स्वतंत्र गल्प-लेखकोंका हिन्दीमें, उस उत्सुकताकी अपेक्षा कई गुना अधिक अभाव है। इस अभावको ही अनुभव करके मैंने यह पुस्तक हिन्दी-प्रेमियोंके सन्मुख रखनेका साहस किया है।

अब तक मैं उर्दू भाषामें ही लिखता रहा हूँ। हिन्दीमें यह मेरा 'श्री-गणेश' है। इसलिए आशा है कि, यदि इसमें कोई त्रुटि दिखाई दे, तो पाठक मुझे क्षमा करेंगे।

लाहौर, रामकुटिया
२० अगस्त, १९१९.

सुदर्शन

दूसरी बात—सन् १९४०

जिस समय मैंने इस किताबकी कहानियाँ लिखीं, उस समय मेरी उम्र अठारह उन्नीस सालसे ज़्यादा न थी। उस समय लिखनेका इतना चाव था, कि जब लिखने बैठता था, तो एक कहानीको एक ही बैठकमें समाप्त करके उठता था। आज अगर कोई मुझसे यह कहे कि कहानी शुरू करो और समाप्त करके उठो, तो मैं इसे सज़ा और सख़्ती समझूँ। मगर उस समय यह सज़ा और सख़्ती न थी, मज़ा और मनोरंजन था। मैं एक ही बैठकमें कहानी समाप्त करके ख़ुश होता था। उन दिनों मुझे कथानक सोचने और खोजनेकी ज़रा भी ज़रूरत न पड़ती थी। इरादा किया लिखूँ, और विषय सामने आकर खड़ा हो गया। अब कहानी लिखनी हो, तो कई कई दिन

हैरानी और परेशानीमें बीत जाते हैं कि क्या लिखूँ और कैसे लिखूँ। पहले मज़मून नहीं मिलता, मज़मून मिलता है, तो यह नहीं सूझता कि कैसे शुरू करूँ ? कभी कभी विचार आता है, कि ' पुष्प-लता 'के वह फूल दिन कैसे अच्छे थे, जब हवाका हर एक झोंका अपने साथ एक कहानी ले आता था, और उन कहानियोंमें कला और कल्पनाका कमाल मालूम होता था। आज उन कहानियोंमें मेरी अपनी आँखें कई अभाव और अवगुण देखती हैं। मगर वह अभाव और अवगुण ऐसे नहीं कि मेरे लिए उनमें शर्म और शर्मिन्दगी हो। हर जवान आदमी जो आज जीवन और जवानीके जोशमें दौड़ता फिरता है, कभी छोटा था, और चलने फिरनेमें लड़खड़ाता था। अगर उसे उसके बचपनकी तसवीर दिखाई जाए, जिसमें वह लड़खड़ा रहा हो, तो उसे शर्म नहीं आती। मैं भी उस पहली किताबकी पहली कहानियोंमें अपनी कहानियोंका शुरू युग देखता हूँ तो मुझे मज़ा आता है, और मैं यह देखकर खुश होता हूँ कि मैं कहाँसे कहाँ आ गया ?

मेरे एक मित्रने मेरी ' पनघट ' और ' चार कहानियाँ ' पढ़कर कहा—' पुष्प-लता ' और इन कहानियोंमें कितना अन्तर है ? मैंने जवाब दिया, अगर ' पुष्प-लता ' न होती तो ' पनघट ' और ' चार कहानियाँ ' भी न होतीं। ' पुष्प-लता ' माँ है, ' पनघट ' और ' चार-कहानियाँ ' उसी माँकी बेटियाँ हैं। ' पुष्प-लता ' बचपन है, ' पनघट ' और ' चार कहानियाँ ' उसी बचपनकी जवानियाँ हैं। बचपनके चेहरेको अच्छी तरहसे देखो, उसमें जवानी झाँकती हुई नज़र आएगी। जवानीकी आँखोंमें अच्छी तरह खोज करो, उसमें बचपनकी अदाएँ झलकती हुई दिखाई देंगी।

जिनको साहित्यिक बचपन और जवानीकी यह ललित लीला देखनी हो वह पहले मेरी यह पुस्तक ' पुष्प-लता ' पढ़ें, फिर ' पनघट ' और ' चार-कहानियाँ ' पढ़ें। तब उन्हें एक अजीब-ग़रीब दुनिया नज़र आएगी, और वह देखेंगे कि आदमी बीस सालमें कितना बदलता है और क्यासे क्या हो जाता है।

सिलवर-टन
माहिम—बम्बई
२७ अगस्त, १९४०

सुदर्शन

कहानियोंकी सूची

कहानी		पृष्ठसंख्या
✓१ बैजू बावरा	...	१
२ सेवक	...	११
३ थोड़ा-सा झूठ	...	२७
४ पापका पैसा	...	४४
✓५ संसार सुपना	...	५५
✓६ पतितोद्धार	...	६८
✓७ प्रतिकार	...	८७
✓८ न्यायकी परख	...	९७
✓९ भलाईका बदला	...	११८
✓१० शिक्षा	...	१३३
११ राजपूतानीका प्रायश्चित्त		१४०

बैजू बावरा

१

प्रभातका समय था। आसमानपे बरसती हुई जीवनकी किरणें प्राणिमात्रमें नवीन जीवनका संचार कर रही थीं। बारह घण्टोंके लगातार संग्रामके बाद प्रकाशने अन्धेरेपर विजय प्राप्त की थी। इस खुशीमें बागके फूल झूम रहे थे और पक्षी मीठे गीत गा रहे थे। पेड़ोंकी शाखाएँ खेलती थीं और पत्ते तालियाँ बजाते थे। चारों तर्फ़ प्रकाश नाचता था, चारों तर्फ़ खुशियाँ मुस्कराती थीं।

इतनेमें साधुओंकी एक मण्डली शहरके अन्दर दाख़िल हुई। ये लोग मस्त-मौला, ईश्वर-भक्त और हरि-भजनके मतवाले संसारके बन्धन तोड़ चुके थे, मनको मार चुके थे। सोचते थे—मन बड़ा चंचल है, अगर काम न हो तो इधर उधर भटकने लगता है और अपने स्वामीको विनाशकी खाईमें गिरा कर मार डालता है। इसे भक्तिकी ज़ंजीरोंसे जकड़ देना चाहिए; नहीं तो साँप बनकर डस लेता है और

बिच्छू बनकर काट खाता है। साधू गाते थे—

सुमर सुमर भगवानको,
मूरख ! खाली छोड़ न मनको।

जो संसारको त्याग चुके थे उनको सुर-तालकी क्या परवाह थी ? कोई ऊँचे स्वरमें गाता था, कोई मुँहमें ही गुनगुनाता था। ये अपने रागमें मगन थे कि सिपाहियोंने आकर घेर लिया और हथकड़ियाँ पहना कर वे अकबर बादशाहके दरबारको ले चले।

यह वह समय था जब हिन्दोस्तानमें अकबरकी तूती बोलती थी और उसके मशहूर गवैये तानसेनने यह कानून बना दिया था कि जो आदमी गान-विद्यामें उसकी बराबरी न कर सके, वह आगरे-की सीमामें गीत न गाए। और जो गाए, उसे मौतकी सज़ा दी जाए। बेचारे बनवासी साधुओंको पता नहीं था। परन्तु अज्ञान भी अपराध है। अभियोग दरबारमें पेश हुआ। तानसेनने गान-विद्याके कुछ प्रश्न किये, साधु उत्तरमें मुँह ताकने लगे। अकबरके होंठ हिले और सबके सब साधु तानसेनकी दयापर छोड़ दिये गये।

दयाका भाव निर्बल था, इतना सहार न सका। मृत्यु-दण्डकी आज्ञा हुई। केवल एक दश वर्षका बच्चा छोड़ा गया। - बच्चा है, इसका दोष नहीं, और यदि है भी तो क्षमाके योग्य है।

२

बच्चा रोता हुआ आगरेके बाजारोंसे निकला और सिर पीटता हुआ जङ्गलमें जाकर अपनी कुटियामें लेटकर तड़पने लगा।—बाबा ! तू कहाँ है ? अब कौन मुझे प्यार करेगा ? कौन मुझे कहानियाँ सुनाएगा ? लोग आगरेकी तारीफ़ करते हैं मगर इसने मुझपर जुल्म किया। इसने मेरा बाबा छीन लिया और मुझे अनाथ बना कर छोड़ दिया।—बाबा ! तू कहा करता था कि संसारमें चप्पे चप्पे पर

दलदल हैं और चप्पे चप्पे पर काँटोंकी झाड़ियाँ हैं। यहाँ आदमी फिसल जाता है और काँटोंमें उलझ जाता है। अब कौन मुझे इन झाड़ियोंसे बचाएगा ? और कौन मुझे सीधा रास्ता बताएगा ?

इन्हीं विचारोंमें डूबा हुआ बच्चा देर तक रोता रहा। इतनेमें खड़ाऊँ पहने हुए, हाथमें माला लिये हुए, राम नाम जपते बाबा शंकरानन्द कुटियाके अन्दर आये और बोले—बैजू बेटा ! शान्ति करो। शान्ति करो।

बैजू घबरा कर उठा और इन महात्माके चरणोंसे लिपट गया। दुःखमें कोई जरा-सी भी सहानुभूति प्रकट करे तो आँसुओंकी धारा बह निकलती है। बिलख बिलख कर रोते हुए बैजूने कहा—महाराज, मेरे साथ अन्याय हुआ है ! मुझ पर वज्र गिरा है !

शंकरानंद बोले—शान्तिः शान्तिः।

बैजू—महाराज, तानसेनने मुझे तबाह कर दिया !

शंकरानन्द—शान्तिः शान्तिः।

बैजूने चरणोंसे लिपट कर कहा—महाराज, शान्ति जा चुकी। अब मुझे बदलेकी चाह है। अब मुझे प्रतिकारकी इच्छा है।

शंकरानन्दने फिर कहा—बेटा ! शान्तिः शान्तिः।

बैजूने करुणा और क्रोधकी आँखोंसे बाबाजीकी तरफ़ देखा। और उन आँखोंमें आँसू थे, और आहें थीं, और आग थी। जो काम ज़बान नहीं कर सकती उसे आँखें कर देती हैं, और जो काम आँखें नहीं कर सकतीं उसे आँसू कर देते हैं। बैजूने यह दो आखरी हथियार चलाए और सिर झुका लिया।

शंकरानन्दके धीरजकी दीवार आँसुओंकी बौछार न सह सकी, काँप कर गिर गई। उन्होंने बैजूको उठाकर हृदयसे लगाया और कहा—आ, तुझे वह हथियार दूँ जिससे तू अपने पिताकी मौतका बदला ले सके।

बैजू उछल पड़ा—बाबा, आपने मुझे ख़रीद लिया।

शंकरानन्द—मगर उसके लिए तुझे बारह साल तक तपस्या करनी होगी।

बैजू—महाराज, आप बारह साल कहते हैं, मैं सारा जीवन देने-को तैयार हूँ। मैं तपस्या करूँगा, मैं दुःख झेलूँगा, मैं मुसीबतें उठा-ऊँगा। मैं अपने जीवनका एक एक क्षण आपकी भेंट कर दूँगा। मगर क्या इसके बाद मुझे वह हथियार मिल जाएगा जिससे मैं अपने बापकी मौतका बदला ले सकूँ?

शंकरानन्द—हाँ मिल जाएगा।

बैजू—तो मैं आजसे आपका गुलाम हूँ।

३

ऊपरकी घटनाको बारह वर्ष बीत गए। जगतमें बहुतसे परिवर्तन हो गए। कई बस्तियाँ उजड़ गईं। बन बस गये। बूढ़े मर गये। जो जवान थे उनके बाल सफ़ेद हो गए।

अब बैजू बावरा जवान हो चुका था और गान-विद्यामें दिनपर दिन आगे बढ़ रहा था। उसके स्वरमें जादू भर चुका था और तानमें एक आश्चर्यमयी मोहिनी आ गई थी। गाता था तो पत्थर तक पिघल जाते थे और पशु-पंछी तक मुग्ध रह जाते थे। लोग सुनते थे और झूमते थे, और वाह वाह करते थे।

एक दिन शंकरानन्दने हँसकर कहा—बेटा, मेरे पास जो कुछ था तुझे दे डाला। अब तू पूर्ण गन्धर्व हो गया है। अब मेरे पास और कुछ नहीं है।

बैजू हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। कृतज्ञताका भाव आँसुओंके रूपमें बह निकला। चरणोंपर सिर रख कर बोला—महाराज, आपका उपकार जन्म-भर सिरसे न उतरेगा।

शंकरानन्द सिर हिला कर बोले—यह नहीं, कुछ और कहो।

बैजू—मैं तैयार हूँ।

शङ्करानन्द बोले—प्रतिज्ञा करो।

बैजूने बिना सोचे-विचारे कह दिया—मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि...

शङ्करानन्दने वाक्यको पूरा किया—इस राग-विद्यासे किसीको हानि न पहुँचाऊँगा।

बैजूका ख़ून सूख गया। पैर लड़खड़ाने लगे। सफलताके बाग़ परे भागते हुए दिखाई दिये। बारह वर्षकी तपस्यापर पानी फिर गया। प्रतिहिंसाकी छुरी हाथ आई तो गुरुने एक प्रतिज्ञा लेकर कुन्द कर दी। बैजूने होंठ काटे, दाँत पीसे; और रक्तका घूँट पीकर रह गया।

४

कुछ दिन बाद एक सुन्दर नवयुवक साधु आगरेके बाजारोंमें गाता हुआ जा रहा था। दूकानदार और राहगीरोंने समझा कि इसकी भी मौत आ गई है। वे उठे कि उसे नगरकी रीतकी सूचना दे दें, मगर निकट पहुँचनेसे पूर्व ही मुग्धावस्थाको प्राप्त होकर अपने आपको भूल गए और किसीका साहस न हुआ कि उससे कुछ कहे। दमके दममें यह समाचार नगरमें जङ्गलकी आगके समान फैल गया कि एक साधु रागी आया है जो बाजारोंमें गा रहा है। सिपाहियोंने हथकड़ियाँ सँभाल लीं और पकड़नेके लिए साधुकी ओर आए। परन्तु पास आना था कि रंग पलट गया! साधुके मुख-मण्डलसे तेजकी किरणें फूट फूट कर निकल रही थीं जिनमें जादू था, मोहिनी थी और मुग्ध करनेकी शक्ति थी। सिपाहियोंको न अपनी सुधि रही न हथकड़ियोंकी, न अपने बलकी न अपने कर्त्तव्यकी। वे आश्चर्यसे उसके मुखकी ओर देखने लगे जहाँ सरस्वतीका वास था और जहाँसे संगीतकी मधुर ध्वनिकी

धारा बह रही थी। साधु मस्त था और सुननेवाले मस्त थे। गाते गाते साधु भी धीरे धीरे चलता जाता था और स्रोताओंका समुद्र भी धीरे धीरे चल रहा था। ऐसा मालूम होता था, जैसे एक समुद्र है जिसे नवयुवक साधु आवाज़ोंकी जंजीरोंसे खींच रहा है और संकेतसे अपने साथ साथ आनेकी प्रेरणा कर रहा है।

मुग्ध जन-समुदाय चलता गया, चलता गया, पर पता नहीं कि किधरको। जब एकाएक गाना बन्द हो गया, जादूका ताँता टूट गया, तो लोगोंने देखा कि वे तानसेनके महलके सामने खड़े हैं! उन्होंने दुःख और पश्चात्तापसे हाथ मले—हाय रे! यह कहाँ आ गए! साधु अज्ञानमें ही मृत्युके द्वारपर आ पहुँचा। भोली भाली चिड़िया अपने आप अजगरके मुँहमें आ फँसी थी।

तानसेन बाहर निकला। नागरिक जनताके एक दलको देखकर वह हैरान हुआ और फिर समझकर बोला—तो, आपके सिरपर आज शायद मौत सवार हो रही है?

नवयुवक साधु मुस्कराया—जी हाँ, मैं आपके साथ गान-विद्यापर चर्चा करना चाहता हूँ।

तानसेनने बेपरवाहीसे उत्तर दिया—बहुत अच्छा।

इस समय सिपाहियोंको अपनी हथकड़ियोंका ध्यान आया। झंकारते हुए आगे बढ़े और उन्होंने नवयुवक साधुके हाथोंमें हथकड़ियाँ पहना दीं। भक्तिका ताँता टूट गया। श्रद्धाके भाव पकड़े जानेके भयसे उड़ गये और लोग इधर उधर भागने लगे। सिपाही कोड़े बरसाने लगे और लोगोंके तितर-बितर हो जानेके बाद नवयुवक साधुको दर्बारकी ओर ले चले। दर्बारकी ओरसे शर्तें सुनाई गईं कि कल प्रातःकाल नगरके बाहर बनमें तुम दोनोंका गान-युद्ध होगा। अगर तुम हार गये तो तुम्हें मार डालनेका तानसेनको पूर्ण अधिकार होगा और अगर तुमने उसे हरा दिया तो उसका जीवन तुम्हारे हाथमें होगा।

नौजवान साधुने शर्तें मंजूर कीं और दर्बारने आज्ञा दी कि कल प्रातःकाल तक पोलिसकी रक्षामें रहो।

यह नौजवान साधु बैजू बावरा था।

५

भगवान् सूरजकी पहली किरणने आगरेके लोगोंको आगरेसे बाहर जाते देखा। साधुकी प्रार्थनापर सर्वसाधारणको भी उसके जीवन और मृत्युका तमाशा देखनेकी आज्ञा दे दी गई थी। साधुकी विद्वत्ताकी धाक दूर-दूर तक फैल चुकी थी। जो कभी अकबरकी सवारी देखनेको घरसे बाहर नहीं निकले थे, जिन्होंने कभी बड़े बड़े त्योहारोंपर भी बाहर आना पसन्द नहीं किया था, आज वे भी नई पगड़ियाँ बाँध रहे थे।

ऐसा जान पड़ता था कि आज नगरसे बाहर बनमें नया नगर बस जानेको है,—वहाँ जहाँ कनातें लगी थीं, चाँदनियाँ तनी थीं। जहाँ कुर्सियोंकी कतारें सजी थीं। इधर जनता बढ़ रही थी और उद्विग्नता और अधीरतासे गान-युद्धके समयकी प्रतीक्षा कर रही थी। बालकको प्रातःकाल मिठाई मिलनेकी आशा दिलाई जाए तो वह रातको कई बार उठ उठ कर देखता है कि अभी सूर्य निकला है या नहीं।

दस बज गए। लोगोंने आँख उठाकर देखा : अकबर सिंहासनपर था, साथ ही नीचेकी तरफ तानसेन बैठा था और सामने फर्शपर नवयुवक बैजू बावरा दिखाई देता था।

अकबरने घण्टी बजाई और तानसेनने कुछ सवाल संगीत-विद्याके सम्बन्धमें बैजू बावरासे पूछे। बैजूने उचित उत्तर दिये और लोगोंने हर्षसे तालियाँ बजाईं। मुखसे "जय हो" "जय हो" "बलिहारी बलिहारी" की ध्वनि निकलने लगी। मारनेवाले मास्टरको अगर इन्स्पेक्टर झाड़ दे तो बालक प्रसन्न हो जाते हैं।

बैजू बावराने सितार हाथमें ली और जब उसके पर्दोंको हिलाया तो जनता ब्रह्मानन्दमें डूब गई और वृक्षोंके पत्ते तक निःशब्द हो गये। वायु रुक गया और सुननेवाले मंत्र-मुग्धवत् सुधिहीन हुए सिर हिलाने लगे। बैजू बावरेकी अँगुलियाँ सितारपर दौड़ रही थीं। उन तारोंपर राग-विद्या निछावर हो रही थी और लोगोंके मन चकोरके समान उछल रहे थे।

लोगोंने देखा और हैरान होकर रह गये, कि कुछ हरिण छलाँगे मारते हुए आए और बैजू बावरेके पास खड़े हो गये। बैजू बावरा सितार बजाता रहा, बजाता रहा, बजाता रहा। और वह हरिण सुनते रहे, सुनते रहे, सुनते रहे।

हरिण मस्त और बेसुध थे। बैजू बावराने सितार हाथसे रख दी और अपने गलेसे फूल-माला उतारकर उन्हें पहना दी। फूलोंके स्पर्शसे हरिणोंको सुध आई और वे चौकड़ी भरते हुए भागकर ग़ायब हो गये। बैजूने कहा—तानसेन, मेरी फूल-माला यहाँ मँगवाओ; तब मैं जानूँ, कि आप गाना जानते हैं।

तानसेन सितार हाथमें लेकर अपनी पूर्ण प्रवीणताके साथ बजाने लगा। ऐसी अच्छी सितार ऐसी एकाग्रताके साथ उसने अपने जीवन-भरमें कभी न बजाई थी। सितारके साथ वह आप सितार बन गया और पसीना पसीना हो गया। उसको अपने तनकी सुधि न थी और सितारके बिना संसारमें उसके लिए कुछ न था। आज उसने वह बजाया जो कभी न बजाया था। आज उसने वह बजाया जो कभी न बजा सकता था। यह सितारकी बाज़ी न थी, जीवन और मृत्युकी बाज़ी थी। आज तक उसने अनाड़ी देखे थे। आज उसके सामने एक उस्ताद बैठा था। कितना ऊँचा! कितना गहरा!! कितना महान्!!!

बहुत समय बीत गया। अँगुलियाँ दुखने लगीं। लोगोंने

आज तानसेनको पसन्द न किया। सूर्य और जुगनूका मुकाबिला ही क्या!

बहुत चेष्टा करनेपर भी जब कोई हरिण न आया तो तानसेनकी आँखोंके सामने मौत नाचने लगी। देह पसीना पसीना हो गई थी। लज्जाने मुखमण्डल लाल कर दिया था। आखिर खिसियाना होकर बोला—वे हरिण तो अचानक इधर आ निकले थे, रागकी तासीर न थी। हिम्मत है तो अब दोबारा बुलवाओ।

बैजू बावरा मुस्कराया और धीरेसे बोला—बहुत अच्छा।

यह कहकर उसने फिर सितार पकड़ ली। एक बार फिर संगीत-लहरी वायुमण्डलमें लहराने लगी और फिर सुननेवाले संगीत-सागर-की तरंगोंमें डूबने लगे। हरिण बैजू बावरेके पास फिर आए। वही हरिण जिनकी गरदनमें फूलमालाएँ पड़ी हुई थीं और जो रागकी सुरीली ध्वनिके जादूसे बुलाये गये थे। बैजू बावराने मालाएँ उतार लीं और हरिण कूदते हुए जिधरसे आए थे उधरको चले गए।

अकबरका तानसेनके साथ अगाध प्रेम था। जब उसकी मृत्यु निकट देखी तो उनका कण्ठ भर आया। परन्तु प्रतिज्ञा हो चुकी थी। वे विवश होकर उठे और संक्षेपमें निर्णय सुना दिया—

"बैजू बावरा जीत गया। तानसेन हार गया।"

तानसेन काँपता हुआ आगे बढ़ा। वह जिसने अपने जीवनमें किसीको मृत्युके घाट उतारते हुए दया नहीं की थी, उस समय दयाके लिए गिड़गिड़ा गिड़गिड़ाकर प्रार्थनाएँ कर रहा था।

बैजू बावरा ने कहा—मुझे प्राण लेनेकी इच्छा नहीं, तुम इस निष्ठुर नियमको तुड़वा दो कि 'जो कोई आगरेकी सीमाओंके अन्दर गाए, अगर तानसेनके जोड़का न हो, तो मरवा दिया जाय।'

अकबरने अधीर होकर कहा—वह नियम अभी, इसी क्षणसे उड़ता है।

तानसेन बैजू बावरेके चरणोंमें गिर गया, और दीनतासे कहने लगा—यह उपकार जीवन-भर न भूलूँगा।

बैजू बावराने जवाब दिया—बारह वर्षकी बात है, तुमने एक बच्चेकी जान बख्शी थी, यह उसीका बदला है।

तानसेन हैरान होकर देखने लगा।

सेवक

१

मस्टर श्यामसुन्दर कलकत्तेके प्रसिद्ध व्यापारी थे, डीलडौलमें बड़े ही सुन्दर, मधुर आकृति और सरल स्वभाव। लाखोंका व्यापार था। अनेक बैंकोंमें उनका भाग था। कारखाने, कोठियाँ, हाट और भवन थे। रुपया पानीके समान आता था, पानीके समान वह जाता था।

श्यामसुन्दर रसिक आदमी थे। आय-व्ययकी कुछ चिन्ता न थी। उनके यहाँ नित्य कोई न कोई भोज रहा करता। दशहरा आया, उत्सव होना चाहिए। मित्रमण्डली आयगी, दो घड़ी मेला ही सही। दीवाली आई, आनन्द मनाओ। कौन जाने दूसरे साल क्या हो जाए। चार-पाँच सौ उठ जाएँगे तो कौन किलेको आग लग जायगी? बिसाखी आई, नये वर्षका नया दिन है, दिल खोलकर खरच करो। मिठासपर मक्खियाँ प्रायः भिनभिनाने लगती हैं। श्यामसुन्दरके चारों ओर रसके लोभी भौंरे जमा हो गए। उनको रुपएकी प्यास थी और इनके यहाँ कोई

संकोच नहीं था। प्रायः जोशसे कहा करते, रुपया क्या है, हाथका मैल है। मनुष्य इसे बनाता है, मनुष्य ही इसे गँवा देता है। जो गँवाना जानता है कमाना उसके लिए कठिन नहीं है। आदमी रुपएको बनाता है, रुपया आदमीको नहीं बनाता। जो रुपएकी परवाह करते हैं और उसके व्ययमें संकोच करते हैं उनके दिमाग़में विकार है। रुपयेकी महिमा तो इसीमें है कि खर्च किया जाय। वर्ना भूमिमें गड़ा हुआ तो सोना लोहा दोनों एक समान है। लक्ष्मी देवी बंधनसे घबराती है, और उड़कर वहाँ पहुँचती है जहाँ स्वतंत्रताका पवन चलता है और एक हाथसे दूसरे, दूसरेसे तीसरेमें जानेका अवसर मिलता है। प्रायः कबीर साहबका यह दोहा पढ़ा करते—

देह धरेका गुण यही, देह देह कछु देह।
उस दिन फिर पछताओगे, जब देह हो जावे खेह॥

गंगा बह रही हो तो पत्तियोंके पीनेसे कोई कमी नहीं हो जाती। इतनी जायदाद है, किस दिन काम आयगी? जो पास होते हुए भी मित्र-दोस्तोंसे संकोच करे उसके जीवनपर धिक्कार है।

मित्र सुनते तो पीठ ठोकते। "धन्य हो, धन्य हो" की घोषणासे घर गूँजने लगता। 'सचमुच आप अपने समयके कर्ण हैं।' श्यामसुन्दर यह सुनते तो फूले न समाते। मुस्कराहट हँसीमें बदल जाती, परन्तु, अन्दर ही अन्दर पी जाते और सिर झुकाकर कहते—यह आपकी मेहरबानी है।

श्यामसुन्दरके यह भाव ज़बान नहीं दिलसे निकलते थे। उनकी ज़बान हाथोंकी उदारतासे निहाल हो जाती थी।

एक मित्रने आदम-क़द शीशेकी तारीफ़ की; शामको शीशा उनके यहाँ पहुँचा दिया गया। हारमोनियम पौने दो सौका ख़रीद था, एक दिन एक रागीने बजाया तो सुरीले स्वरोंसे श्रोताओंको तसवीर बना दिया। श्यामसुन्दर बहुत ही प्रसन्न हुए और इनाममें बाजा ही रागीको

दे दिया। गद्देदार कुर्सियों और सोफेका सैट तीन सौ साठको मँगवाया और हँसी हँसीमें ही गामू पहलवानके यहाँ भेज दिया।

इन दरयादिलियोंके साथ साथ रसिक-समाज भी जुटने लगा। शुरू शुरूमें तो प्यास लैमोनेडसे ही बुझ जाती थी, मगर नए नए मित्रोंके साथ एक दिन लाल परी भी इस मुग्ध मण्डलीमें शरमाते शरमाते आकर बैठ गई। यह आरम्भ था, कुछ दिनों बाद यह नौबत आ गई कि इसके बिना समाजका रंग ही न जमता था। और मिस्टर श्यामसुन्दर पर तो ऐसा जादू हुआ कि दिन-रात मस्त रहने लगे।

कर्म्मचारियोंने यह देखा तो अपना घर बनानेकी चिन्ता हुई। एक सूर्य्य फटता है तो कई पृथिवियाँ बन जाती हैं। क्या एक धनवानके बिगड़नेसे बीसियों निर्धनोंके दिन न फिर जाएँगे? कर्मचारी अपना घर भरनेकी सोच रहे थे। बेचारी पद्मा रो रो कर ईश्वरसे प्रार्थना कर रही थी कि मेरे पतिको सीधा मार्ग दिखा। मगर श्यामसुन्दर अपने पथपर सरपट भागे जा रहे थे; न आँखें कर्म्मचारियोंके बुरे संकल्पोंको देख सकती थीं, न कान पत्नीकी प्रार्थनाएँ सुनते थे।

२

ईश्वरदास उनका पिता-पुरखी सेवक था। दिलका खरा, स्वभावका स्वामिभक्त। श्यामसुन्दरके पिता कहा करते थे कि ऐसा भलामानस सेवक मिल जाना उनके लिए सौभाग्य सिद्ध हुआ है। एक बार उसने उनके प्राण बचाए थे और अपने आपको उनके लिए संकटमें डाल दिया था। जब वे मरने लगे तो श्यामसुन्दरका हाथ इसीके हाथमें दे गये थे और श्यामसुन्दरको यह उपदेश कर गए थे कि यह तुम्हारे पिताके समान है। जैसा अदब अब तक मेरा करते रहे हो, वह अब इसका करना। ईश्वरदासने रोते हुए श्यामसुन्दरका हाथ अपने हाथमें

लिया और श्यामसुन्दरने सिर झुकाकर ईश्वरदासकी भुजच्छाया स्वीकार करनेकी प्रतिज्ञा की।

पिताकी मृत्युके बाद श्यामसुन्दरने अपने वचनको पूरा निभानेका प्रयत्न किया और सारा रुपया-पैसा ईश्वरदासके ही हाथमें सौंप दिया। यही नहीं वरन् घरकी गुप्त घटनाएँ, जिन्हें श्यामसुन्दर पद्मासे भी छुपाकर रखते थे, ईश्वरदासके सन्मुख निःसंकोच होकर कह डालने और कोई काम न करते जिसमें ईश्वरदाससे राय न ले लेते थे।

ईश्वरदासके मनमें खोटन था। उसने संसार के सैकड़ों उलट पलट अपनी आँखों देखे थे। बालकी वह खाल उतारता और बातके रहस्यको वह ऐसा पा जाता कि श्यामसुन्दर अवाक् रह जाते और कहते कि मैं अगर घण्टों माथापच्ची करता तो भी इस परिणामपर न पहुँचता। ईश्वरदास हँस पड़ता—सच है, तुम्हारे पास विद्या तो है परन्तु उसमे अभी काम नहीं लिया गया। विद्या सोना है परन्तु भूमिकी मिट्टी और मलिनतासे लथपथ है; जब तक प्रयोगकी भट्टीमें उसे तपाया न जाए तब तक कुन्दन नहीं बनता, और जब तक कुन्दन न बने तब तक संसारमें उसकी पूरी क़ीमत नहीं उठती।

जब मिस्टर श्यामसुन्दर की संगति बिगड़ने लगी और रंग ढंग बदलने लगे तो ईश्वरदासको चिन्ता हुई। आदमी बुद्धिमान् था, रूबरू बात करना उचित न समझा। इशारेसे एक दो बार समझाया, मगर कुछ असर न हुआ। रंग जो चढ़ चुका था इतना गाढ़ा था कि सादे जलसे न धुला। इसके लिए ठोकरके साबुनकी आवश्यकता थी।

इधरकी तो यह दशा थी उधर पद्मा भी अपने कर्त्तव्यसे गाफ़िल नहीं थी। स्त्रीका सबसे बड़ा शस्त्र रोना है। इस शस्त्रका उसने कई बार प्रयोग किया। कई बार रो रो कर उसने पतिको इस भयानक गतिसे सचेत किया और भयंकर विनाशकारक परिणामको बतला कर इस कुमार्गको त्याग करनेकी प्रार्थना की।

श्यामसुंदरने बारम्बार प्रतिज्ञाएँ कीं कि अब यह भूल कभी न होगी, परन्तु इधर घरसे बाहर पाँव रखते उधर प्रतज्ञिाएँ टूट जातीं। फिर वहीं रसिक-समाज जम जाता. फिर वही चक्र चलने लगता। फिर शराब आती, फिर बुद्धि बिगड़ती, फिर दौर उड़ते और ग़रीब पद्मा अपनी क़िस्मतको रोकर रह जाती।

तैराक जब हाथ-पैर मार मार कर थक जाता है तब उसे आश्रयका ध्यान आता है। ईश्वरदास और पद्मा दोनों जब अपने अपने यत्नों-में हार गए तब उन्हें एक दूसरेकी सहायता की जरूरत पड़ी। एक दिन पद्माने मुन्शी ईश्वरदाससे कहा—क्या अब बिलकुल ही कुछ न बनेगा ?

ईश्वरदासने पद्माके भाव समझकर उत्तर दिया—बेटी, कुछ तुम ही बताओ, मेरी बुद्धि तो काम नहीं करती।

"परमात्माके लिए कुछ सोचो, कोई उचित उपाय निकालो। मेरे किये कुछ न बनेगा। जो कुछ करना है आपहीको करना है।"

ईश्वरदास खातेपर सिर झुकाकर सोचने लगा और कुछ गणना करके बोला—आधा रुपया इस भोग-विलासकी भेंट हो चुका है। कारखाने घाटेपर चल रहे हैं। क्लार्क बाबूजीके मुँह लगे हुए हैं। उनको कोई क्या कहे ? दोनों हाथोंसे लूट रहे हैं। अगर यही अवस्था रही तो चार दिनमें सारा खेल समाप्त हो जायगा। बननेमें साल लगते हैं, बिगड़नेमें महीने भी नहीं लगते।

पद्माके सन्मुख वह चित्र खिंच गया जिसे वह कई बार स्वप्नमें देख चुकी थी कि उसकी देहपर फटे पुराने चिथड़े लटक रहे हैं और नन्हां बच्चा रोटीके टुकड़ेके लिए बिलख रहा है। वह हिचकियाँ ले-ले कर रोने लगी—तुम मेरे पिताके समान हो, परमात्माके लिए उन्हें समझाओ।

ईश्वरदासकी आँखें सजल हो गईं। बोला—बेटी, सोतेको

जगाना आसान है मगर जागतेको जगाना आसान नहीं। जब निराशा आशाके शीशोंको तोड़ देती है तो एक एक शीशेसे निराशाकी मूर्ति झाँकती हुई दिखाई देती है। ईश्वरदासके उत्तरसे पद्माका दिल टूटकर टुकड़े टुकड़े हो गया।

वह बालकोंकी तरह फूट फूट कर रोने लगी और बहुत देर तक रोती रही। आख़िर एकाएक किसी ख़यालके मनमें आ जानेसे पद्माने सिर उठाया और कहा—मैंने एक बात सोची है, तुम मानोगे?

ईश्वरदासने उत्सुकतासे कहा—मानूंगा क्यों नहीं बेटी? जरूर मानूँगा। कहो तुमने क्या सोचा है?

पद्माने उत्तर दिया—मुझपर जो संकट और विपत्ति आएगी, प्रसन्नतासे सह लूँगी, परन्तु इस दीन शशिकी शिक्षा और पालन-पोषणका कुछ प्रबन्ध होना चाहिए। माता-पिताकी भूलका परिणाम सन्तानको क्यों भुगतना पड़े?

ईश्वरदास समझ न सका कि पद्माका क्या अभिप्राय है। आश्चर्य और चिन्तासे उसके मुखकी ओर देखने लगा और बोला—बेटी, साफ साफ कहो।

पद्माने सावधानीसे चारों ओर देखा और तब वह धीरेसे बोली—आप खजानची हैं, सारा हिसाब किताब आपके हाथमें है, उनको किसी बातका भी पता नहीं है।

"ठीक।"

"अगर आप चाहें तो दस-पन्द्रह हज़ार रुपया इधर उधर कर लेना कोई बड़ी बात नहीं है।"

खजानचीके माथेपर पसीना आ गया। वह पद्माके उपायका बाकी भाग सुननेके लिए अधीर हो उठा।

"बस!" पद्माने अपने कथनको फिर आरम्भ करते हुए कहा—"आप नन्हें शशिके लिए यह पाप करें। और पाप क्यों, मैं आधे

रुपयोंकी मालिक हूँ। मैं आपको हुक्म देती हूँ कि आप दस-पन्द्रह हज़ार रुपया ले जाकर कहीं गाड़ आएँ। परमात्मा न करे, अगर हमपर विपत्तिके दिन टूट पड़ें तो शशिकी देख-भाल आपके हवाले। उन दरिद्रताके दिनोंमें यह रुपया उसके पालन-पोषणके काम आयगा। ईश्वरदासने संतोषकी साँस ली और कहा – बेटी, तुमने मेरे मनसे बोझ हटा लिया। तुम्हारा ख़याल ठीक है।

पद्मा का मुँह चमक उठा हँसकर बोली—तो यह काम आज ही कर डालो ता कि अधीर चित्तको शान्ति मिले। हमारे हाथोंकी अपेक्षा भूमिकी मिट्टी हमारे धनकी ज़्यादा रक्षा कर सकेगी।

ईश्वरदासने उत्तर दिया—बेटी, आज ही रातको सब सम्बन्ध हो जायगा।

दिन बीत गया, भगवान् सूर्य अस्त हो गये। रात आई, चन्द्रदेव आकाशमें जगमगाने लगे। चाँदनीके भयसे अन्धकार वृक्षोंके नीचे छिप रहा था, और ज्यों ज्यों चाँदनी घट रही थी, अन्धकार वृक्षोंके नीचेसे निकलकर उसकी जगहपर कब्ज़ा कर रहा था।

इधर यह संग्राम हो रहा था उधर ईश्वरदास श्यामसुन्दरके साथ भलाई करनेके लिए श्यामसुन्दरकी चोरी करके शहरसे बाहर जा रहा था और निर्जन स्थलीकी खोजमें था। पौण्डों की थैली कन्धेपर थी और हाथमें पकड़ी हुई कुदाल भूमिकी देख-भाल कर रही थी।

आखिर एक स्थान मिला। ईश्वरदासने चारों ओर देखा और कुदालसे भूमि खोदना शुरू कर दिया।

इससे पहले ऐसा कठिन काम उसने कभी नहीं किया था। हाथोंमें छाले पड़ गये, परन्तु एक भाव था जो उसका साहस बढ़ा रहा था और हाथोंसे बलात् काम ले रहा था।

जब भूमि खोदी जा चुकी तो ईश्वरदासने पौण्डोंकी थैली रखकर मिट्टी डालनी आरम्भ की और जल्दी ही भूमिको बराबर कर दिया।

इस तरह जब वह अपने कार्यसे निश्चिन्त हो चुका और वापस मुड़नेको था, तो एकाएक किसीने उसके कन्धेपर हाथ रखकर कहा—मुन्शीजी!

ईश्वरदास सिरसे पैरोंतक काँप गया और उसके मुँहसे हलकी-सी चीख निकल गई।

वापस मुड़कर देखा तो श्यामसुन्दर सामने खड़े थे। ईश्वरदास-का रक्त बरफकी तरह जम गया और वह चित्रके समान निस्तब्ध खड़ा रह गया।

श्यामसुन्दर बोले—मुन्शीजी, यह क्या गोलमाल है? मैं इस समयतक तुम्हें देवता समझे बैठा था, परन्तु आज आँखोंसे परदासा हट गया।

ईश्वरदासने कोई जवाब न दिया। ऐसा जान पड़ता था कि किसीने होठोंपर चुपकी मोहर लगा दी है।

श्यामसुन्दर कुदाल उठाकर भूमि खोदने लगा और सोचने लगा, संसारमें बहुतसे भेड़िये हैं जो भेड़कके लिबासमें गिर रहे हैं।

ईश्वरदास सोचता था—आदमी की आँखें प्रायः धोखा खा जाती हैं और सोनेको पीतल समझकर फेंक देती हैं, परन्तु जब बात खुलती है उस समय आदमी समझता है कि मैंने कैसी भूल की थी।

श्यामसुन्दरका खयाल था कि थैली रुपयोंकी है; परन्तु जब रुप-योंके बदले पौण्ड देखे तो क्रोधकी सीमा न रही। उसके होंठ काँपने लगे और नेत्रोंसे आगकी चिनगारियाँ निकलने लगीं।

वह काँपते हुए स्वरसे बोला—क्यों मुन्शीजी! क्या विश्वास करनेका यही फल था? मालूम होता है, कि तुमने ही मुझे बिलकुल तबाह कर दिया है, पता नहीं ऐसी कितनी थैलियाँ तुम पहले चुरा चुके हो।

यह पहला अवसर था जब श्यासुन्दरने ईश्वरको 'आप' के स्थानमें 'तुम' कहकर पुकारा और ऐसे अपमानजनक शब्द कहे।

ईश्वरदासको यह आशा नहीं थी। वह समझता था कि श्यामसुन्दर सारा हाल पूछेंगे और जो संदेह प्रत्यक्ष चोरीसे उनके मनमें बैठ गया है वह पद्माके ज़रासे सिर झुका देनेहीसे दूर हो जायगा। परन्तु यह आशा पूरी न हुई।

श्यामसुन्दर कम्पित स्वरसे बोले—पापी, विश्वासघाती, पिशाच, तेरी नीचताओंका यह एक नमूना है।

ईश्वरदासकी दृष्टि भूमिपर गड़ी हुई थी, वहीं गड़ी रही। न आँखोंने दयाकी प्रार्थना की, न जबानसे दीनताका शब्द निकला।

श्यामसुन्दर और भड़क उठे और उन्होंने बेतसे ईश्वरदासको मारना आरम्भ किया।

ईश्वरदासके साथ ऐसा व्यवहार कभी आजतक न हुआ था; वह फूट फूट कर रोने लगा। मगर श्यामसुन्दरपर क्रोधका भूत सवार था और वे पागल हो रहे थे, इसलिए बेतोंकी बौछार तब तक जारी रही जब तक बेतके टुकड़े टुकड़े न हो गए।

टूटा हुआ बेत देख कर श्यामसुन्दरने पैरोंसे बूट उतार लिया। ईश्वरदास घुटनोंके बल बैठ गया और सिर झुकाकर बोला—यह सिर हाज़िर है।

जिस तरह तैल से आग भड़क उठती है उसी तरह इस बातसे श्यामसुन्दरका क्रोध भड़क उठा। उन्होंने ईश्वरदासकी गरदन पकड़ ली और वे बूट उसके मुँह पर मारनेको थे कि उसे किसीने पीछेसे खींच लिया—

श्यामसुन्दरने पीछे मुड़कर देखा, रसोइया हरिदास खड़ा था और हाथ जोड़ जोड़ कर कह रहा था—महाराज, दीन बाम्हनकी सुन लो। आप बातको नहीं समझे; मुन्शीजीपर जबरदस्ती हो रही है।.....

श्यामसुन्दरने बात काट कर कहा—तुमको जज किसने बनाया है? तुम यहाँ क्यों आये हो? तुमसे बात किसने पूछी है?

हरिदासने झुककर कहा—हजूर ! मुन्सीजी बड़े खरे आदमी हैं, यह चोरी नाहीं करत हैं। आपका भला सोचत हैं। हमारी बात सुन लो फिर जो जी चहात सो करई, हजूर मालिक अहैं।"

श्यामसुन्दर भेड़ियेकी तरह क्रोधसे पागल हो रहे थे, गर्ज कर बोले – हरामजादे ! पीछे हट जा !

हरिदास कुलीन ब्राह्मण था। कभी उसने अच्छे दिन देखे थे, विधिनाके निर्दय हाथने उसे इस हालमें पटक दिया था, मगर उसने नौकरीमें भी वंशका गौरव स्थिर रक्खा था। इसके सिवाय 'पण्डितजी' के विना दूसरे किसी शब्दसे कभी किसीने उसे पुकारा नहीं था। गाली सुनकर उसका रक्त उबलने लगा। उसने कहा—हुजूर, जबान सँभालकर बोलो !

श्यामसुन्दर नौकरके मुखसे यह शब्द सुनकर कोयला ही हो गए, चिल्लाकर बोले –तू मेरा नौकर है।

हरिदासने उत्तर दिया—हाँ नौकर हूँ। पर सिर बेचा है इज्जत नहीं बेची, काम करत हूँ पैसा लेत हूँ, गाली दीनी तो कुसल नाहीं। हाँ !

श्यामसुन्दर झल्लाए हुए शेरकी तरह हरिदासपर टूट पड़े और उल्लूका पट्ठा, सूअरका बच्चा, नमक हराम, कहते हुए बूट उसके सिरपर लगाना चाहते ही थे कि हरिदासने उनकी टाँगोंमें सिर डालकर उठाया और उन्हें जोरसे भूमिपर दे मारा।

हरिदास गठीला युवक था, लचकीली देह, भरपूर जवानी। श्यामसुन्दरकी हड्डियाँ दुखने लगीं। क्रोधसे काँपते हुए हाथोंने जेबसे तमञ्चा निकालकर सामने किया। ईश्वरदास इस समयतक सँभल चुका था, उसने तमञ्चा देखा तो उसके प्राण सूख गये। समझा कि हरिदासके सिरपर मृत्यु नाच रही है। उसने दौड़कर श्यामसुन्दरको पकड़ना चाहा; परन्तु उसतक पहुँचने न पाया था कि एक गर्ज सन्नाटेमें गूँजी, और हरिदास भूमिपर लोटने लगा !

४

कुछ समयतक श्यामसुन्दर चुपचाप खड़े रहे। वे भूल गए कि मैंने एक हँसते बोलते प्राणीको मौतके घाट उतार दिया है; परन्तु जब सचेत हुए तो गरीब ब्राह्मनकी देह सामने छटपटा रही थी और ईश्वरदास दाँतोंमें अँगुली दबाए खड़ा सोच रहा था कि अब क्या करना चाहिए? श्यामसुन्दरको ऐसा मालूम हुआ, जैसे यह स्वप्नकी घटना है; परन्तु फिर सोचा कि नहीं, जो कुछ है सच है। मैं ईश्वरदाससे लड़ रहा था। हरिदासने दखल दिया। मैंने उसे गाली दी, वह क्रोधमें आ गया। मैंने फिर गाली दी, उसने अपनी स्थितिका विचार न करके मुझे भूमिपर पटक दिया। मुझे क्रोध आया और तमञ्चा निकालकर उसको खत्म कर दिया। हाय! अब क्या होगा? ओह! फाँसी, मृत्यु, विनाश और हत्याके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं।

ईश्वरदासकी आँखोंसे अश्रुधारा बहने लगी। वह बिलख बिलख कर रोते हुए बोला—हुजूर, हुजूर! आप यहाँसे चले जाएँ।

श्यामसुन्दरने कहा—कहाँ चला जाऊँ?

ईश्वरदासने कुछ देर तक सोचा, और इसके बाद उत्तर दिया—आप घर चले जाएँ।

श्यामसुन्दरने लोथकी ओर इशारा किया—और यह?

ईश्वरदास बोला—इससे मैं निपट लूँगा।

श्यामसुन्दरके ममेंमें एकाएक कोई विचार आया। उन्होंने तमञ्चा वहीं फेंका और नगरकी ओर चल दिये।

५

दुनिया सोती थी, परन्तु उसके प्रतिनिधि जागते थे। प्रभात हुआ तो यह घटना बच्चे बच्चे की ज़बानपर थी। हरिदास मर चुका था और ईश्वरदास हवालातमें था। श्यामसुन्दरकी आँखों देखी गवाही थी।

ईश्वरदास अपने मुँहसे स्वीकार कर चुका था। पोलिस इन्स्पैक्टरने अपने हाथों तमंचा ईश्वरदाससे छीना था। दो-तीन आदमियोंसे ईश्वरदासने स्वयं हरिदासके विरुद्ध बातचीत की थी और उसे मार डालनेका संकल्प प्रकट किया था। यह गवाही मामूली न थी। अभियोग चलने लगा। गवाहोंके बयान लिये गए। ज्यूरी (पंचायत) बैठी, दोष सिद्ध हो गया और निरपराध ईश्वरदासको काले पानीकी सजा मिली। संसारमें झूठी तुराजका आदर होता है और न्याय चाँदीके तोल बिकता है।

आदमी संसारको धोखा दे सकता है, परन्तु अपने आपको धोखा नहीं दे सकता। श्यामसुन्दरने अपनी रस्सी ईश्वरदासके गले डलवाई थी। जब उसे निर्वासित करके काले पानी भेजनेका दण्ड दिया गया तो उनके हृदयपर चोट पहुँची और नेत्रोंसे आँसू बह निकले। ईश्वरदासने साहससे दण्डकी आज्ञा सुनी और धीरतासे एक बार श्यामसुन्दरकी ओर देखा। आँखसे आँखका मिलना था कि दोनों ओरसे जलके स्रोत फूट निकले। एक ओरसे इसलिए कि निर्दोष है परन्तु मेरी खातिर दण्ड अपने सिर ले रहा है। दूसरी ओर इसलिए कि पता नहीं, बीस वर्ष जीवन है या नहीं, जो वापस आकर अपने स्वामीकी सेवा कर सकूँ।

नंगी तलवारों और भरी हुई बन्दूकोंके पहरेमें ईश्वरदासको सिपाही अदालतसे ले गये और श्यामसुन्दर रोते हुए घर को लौट आए। पद्माने सुना तो सिर पीट लिया और बराबर कई दिनतक उसे मूर्छा आती रही।

६

बीस वर्ष गुज़र गये। श्यामसुन्दर कौड़ी-कौड़ीको मुहताज हो गए। उनके मित्र तो वास्तवमें रुपयेके मित्र थे उनके मित्र न थे। जब रुपया

न रहा तो वे भी खिसकने लगे। जिनको श्यामसुन्दरके मनोमोदके सिवा कोई काम ही न था अब उनको भी जरूरी काम रहने लगे और इस तरह कामोंकी भरमार होने लगी कि बाजारमें जाते समय दो बातें करनेका भी समय न रहा। एक-दो मित्रोंको तो उनके सगे-सम्बन्धियोंने श्यामसुन्दर जैसे आवारा मिज़ाज आदमीके साथ मिलनेतकसे भी रोक दिया। धन खोकर श्यामसुन्दरको धनकी कदर जान पड़ी। उनकी आँखें तब खुलीं जब देखनेको घरमें कुछ भी न रहा था। मगर अब घर किसका था? वह भी तो साहूकारोंने कुरक करवा लिया था, और अब वह अपने दुर्भाग्यके दिन पतिव्रता स्त्री और नन्हें बालकोंके साथ काट रहा था। चाँदनी जा चुकी थी। अब अन्धेरी रातोंका पार न था। चढ़तीके रंगीले दिनोंकी स्मृतिने बुढ़ापेके दिनोंको और भी दुःखमय बना दिया था। पद्माने जो दशा स्वप्नमें अनेक बार देखी थी, वह सामने आ खड़ी थी। वह चाहती थी—हाय, कितना चाहती थी, कि यह भी सुपना हो। मगर यह सुपना न था, जागृति थी। और अगर सुपना था तो वह लम्बा सुपना था जिससे फिर कभी जागनेकी आशा न थी। वह नींद जिसकी कोई जाग न थी, जिसका कोई अन्त न था।

जिन्हें फूलोंसे जलन होती थी, वह अब काँटोंमें लोटते थे और जिन्होंने कभी भूमिपर पैर भी न रक्खा था उन्हें भूमिका ही आश्रय ढूँढ़ना पड़ा। श्यामसुन्दर एक सेठकी दूकानपर क्लार्कका काम करते थे। प्रातःसे सायंकालतक काम करनेके बाद बीस रुपया महीना पाते थे जो दाल-रोटीमें ही उठ जाते थे। शशिकी शिक्षाका कोई प्रबन्ध न था। बेचारे क्लार्कोंके लिए महीनेके आखिरी दिन बड़े तंग हुआ करते हैं। श्यामसुन्दरके यहाँ भी पिछले दो-तीन दिन चूल्हा गर्म न हुआ था।

तीस तारीख थी। रातका समय था। श्यामसुन्दर, पद्मा और शशि सबके सब भूखे पेट बैठे अपने भले दिनोंकी चर्चा करते थे और रोते थे। और समझते न थे कि अब क्या करें क्या न करें? मिट्टीके दीपकका

तेल समाप्त हो चुका था और उसकी लौ ऊँची हो होकर मन्द पड़ रही थी कि बाहरसे किसीकी आवाज आई—ईश्वर के लिए कोई एक रोटी दे दे।

पद्माने कहा—बाबा ! यहाँ सवेरेसे एक दानातक पेटमें नहीं गया। सौगन्ध है जो जलतक पिया हो। होता तो ना नहीं थी, परन्तु अब क्या किया जाय, क्षमा करो, और दूसरा घर देखो।

शशि जोरसे बोला—बल्कि अगर कुछ है तो दे जाओ।

वृद्धने खाँसते हुए कहा—बेटा ! चार रोटियाँ कहींसे माँग लाया था, ये तुम ले लो।

पद्मा ध्यानसे सुनने लगी, श्यामसुन्दर चिल्ला उठे—पद्मा ! पहचाना, यह हमारा मुन्शी ईश्वरदास है।

पद्माने कहा—हाँ, हाँ, मुझे भी ऐसा ही जान पड़ता है।

इतनेमें ईश्वरदास लाठी टेकता हुआ अन्दर आ गया, और सामने खड़ा हो गया। यह वही था।

दाढ़ी बढ़ गई थी, कमर झुक गई थी, हाथ काँपने लगे थे, टाँगोंमें निर्बलता थी, बाल सफ़ेद हो चुके थे, शक्लमें बहुत फर्क आ गया था; परन्तु मुखमण्डलपर वही शोभा, वही लाली, वही धीरता, वही तेज चमक रहा था जो अदालतमें काले पानीके दण्डकी आज्ञा सुनते समय था।

श्यामसुन्दर विह्वल होकर उसके पैरोंपर गिर पड़े। ईश्वरदास बैठ गया और उनके सिरको छातीपर रखकर बालकोंकी तरह रोने लगा। उसे रोते देख श्यामसुन्दर भी रोने लगे। पद्मा भी रोने लगी। शशि भी रोने लगा। घरकी दीवारें भी रोने लगीं।

जब रोकर दिलोंका गुबार निकाल चुका तो पद्माने कहा—मुन्शीजी ! आपकी क्या सेवा करूँ। कहना चाहता हूँ कि अब हम कंगाल हैं; परन्तु लज्जा मुँह पकड़ लेती है।

ईश्वरदासने उत्तर दिया—बेटी ! कंगाल हों तुम्हारे दुश्मन, तुम क्यों कंगाल होने लगीं। मेरे लिये तुम अभी तक वही पद्मा हो।

पद्माने सिर झुकाकर कहा—हाँ, कहनेको तो वही हूँ, क्योंकि, सुन ही चुके हो प्रातःकालसे सब परिवार भूखा बैठा है।

ईश्वरदास खड़ा हो गया और काँखसे थैली निकालकर श्यामसुन्दरके आगे धरकर बोला—यह आपकी इमानत है, वही थैली जिसपर हरिदासकी हत्या हो गई थी। जब आप वहाँसे शहरको आ गये थे तो जान बूझकर मैंने इसे थोड़े फासलेपर दबा छोड़ा था। इतने समय तक काले पानी रहा, वहाँ भी इस रुपयेका ध्यान नहीं भूलता था। परमेश्वरका शुक्र है, आज मैंने आपकी इमानत आपके हवाले कर दी।

श्यामसुंदर पद्मा शशि सबकी आँखोंसे कृतज्ञताके आँसू बह रहे थे। बूढ़ा ईश्वरदास फिर बोला - श्यामसुन्दर! तुझे मैं अब बतलाता हूँ कि मैं रुपया चुराकर क्यों ले गया था।

श्यामसुन्दर बोले—अब मुझे शर्मिन्दा न करो! मैं वह सब हाल सुन चुका हूँ। हाय! अब मुझे लज्जा आ रही है कि मैंने आपको बुरा-भला क्यों कहा। मैंने आपको क्यों फँसाया? अच्छा होता, मैं आप फाँसीपर चढ़ जाता, मैं बन्दूकसे उड़ाया जाता; मगर तुम्हारे शरीरको दुःख न पहुँचता। हाय! मेरे जैसे पापीको जगतमें जीनेका अधिकार नहीं है।

यह कहकर वे बिलख बिलखकर रोने लगे। ईश्वरदासने श्यामसुन्दरको चुप कराया और कहा—जो कुछ होना था हो गया, अब ये पन्द्रह हज़ार रुपये हैं, इनसे कोई व्यापार करो और भले आदमियों के समान जीवनका निर्वाह करो। ठोकरें खा चुके हो, अब भूल न करोगे।

पद्मा और श्यामसुन्दर दोनों ईश्वरदासके चरणोंमें झुक गये और कहने लगे—तुम्हारा उपकार आयुभर न भूलेगा। तुमने डूबतोंको बचा लिया है।

ईश्वरदासने कहा—आप मुझे शर्मिंदा न करें। मैंने जो कुछ

किया है अपना कर्त्तव्य जानकर किया है। अगर यह न करता, तो मैं आदमी न होता, पशु होता।

पद्मा सुनकर कहने लगी—आप तो देवता हैं।

ईश्वरदासने सिर झुकाकर उत्तर दिया—आप जो जीमें आवे कहें, परन्तु मैं तो समझता हूँ, कि मैं अब भी आपका वही सेवक हूँ, और जब तक जीऊँगा, आपका सेवक रहूँगा।

थोड़ासा झूठ

१

डाक्टर गंगाराम घबड़ाकर घरसे बाहर निकले और होंठ चबाते हुए बोले—इन कमबख़्त चूहोंको क्या हमारे ही घरमें ही मरना था ?

गंगाराम स्वयं बड़े निर्भय प्रकृतिके आदमी थे, और प्लेगसंक्रामित स्थानोंमें जानेसे ज़रा नहीं झिझकते थे। मगर उनकी पत्नी प्रेमदेवीका हृदय इस बातमें उनसे बहुत ही भिन्न था। शहरमें कोई मौत हो जाती तो उसका दिल धड़कने लगता, और पहली बात वह यह पूछती कि यह मौत किसी छूतके रोगसे तो नहीं हुई ? यदि उत्तर 'हाँ' होता तो उसका कलेजा काँप जाता और देहसे पसीना छूटने लग जाता। उसकी इच्छा होती कि जितनी जल्दी हो सके, शहरसे निकल जाऊँ। मगर जब देखती कि पतिको नौकरीकी बेड़ीने जकड़ रक्खा है तो सिटपटा जाती, नौकरीको गालियाँ दे डालती, और चुप

होकर बैठ जाती। डाक्टर गंगाराम बहुत तसल्ली देते थे। इससे प्रेमदेवीके आँसू तो सूख जाते, परन्तु हृदयका धड़कना बन्द न होता था।

दुपहरका समय था। डाक्टर गंगाराम घरपर न थे। प्रेमदेवी छोटे बेटेको सुलाकर अवकाश पाये थी, और बैठकमें बैठी उसके लिए गौन सीं रही थी कि इतनेमें बड़ा लड़का कौतूहलवश एक मरा हुआ चूहा पूँछ पकड़कर अन्दर ले आया और माँको दिखाकर बोला—माँ! चूहा!

प्रेमदेवीने मैशीन चलाना रोककर बच्चेकी ओर देखा, और कहा—मनोहर, क्या है?

"चूहा।"

प्रेमदेवीका शरीर काँप गया। यद्यपि वह स्त्री थी, मगर डाक्टरकी पत्नी थी। फूले हुए चूहेको देखकर समझ गई कि यह प्लेगके रोगसे मरा हुआ चूहा है। दौड़कर आगे बढ़ी और लड़केका हाथ झटककर चूहेको कई गज दूर गिरा दिया। मनमें खयाल आया, लड़का इसे हाथमें पकड़े रहा है। परमेश्वर बचावे। छूतका प्रभाव दूर करनेके लिए उसे कारबोलिक साबुन मलकर निहला दिया, और साथ सरसोंके तेलकी मालिश की। सूँघनेको कपूरकी टिकियाँ दीं, परन्तु हृदयका धड़कना बन्द न हुआ।

अब उस कमरे में बैठना आसान न था। सब ओरके दरवाजे बन्द करके वह दूसरे कमरेमें जा बैठी। सामग्री अग्निमें डाली। दरवाजोंपर फिनायल छिड़की, मगर मरे हुए चूहे की बदबू बराबर आती रही। बाहरकी बदबूसे भागना आसान है, परन्तु जो बदबू मस्तिष्कमें बस जाय, उसकी चिकित्सा कौन करे! प्रेमदेवीने मन ही मन परमात्मासे मंगलके लिए प्रार्थना की, और कष्ट-निवृत्तिकी दशामें पच्चीस रुपये अनाथालयके लिए देनेकी प्रतिज्ञा की। मगर यह सब करते हुए भी न जाने प्रेमदेवी कितनी बार रोई; कितनी बार अपने बच्चोंको उसने

निराशाकी दृष्टिसे देखा। आखिर वह रह न सकी—लड़केको पड़ोसिनके यहाँ ले गई और उससे बोली—बहन! जरा सूँघ कर देखना तो, मनोहर के हाथ से बदबू तो नहीं आती?

पड़ोसिन को पता नहीं था कि मनोहरने मरा हुआ चूहा पकड़ा है, नहीं तो इस तरह सहजहीमें इस काममें हाथ न डालती। उसने बच्चेका हाथ सूँघकर देखा और कहा—नहीं।

मगर प्रेमदेवीकी इस उत्तरसे तसल्ली न हुई। मनमें खयाल आया, कौन जाने इसकी नाकमें सूँघनेकी शक्ति भी है या नहीं? दूसरी पड़ोसिनके यहाँ गई, उसने भी यही उत्तर दिया। तीसरीसे पूछा, उसने भी यही कहा, परन्तु प्रेमदेवीका मन न ठहरा। उसने घर जाकर एक बार मनोहरको फिर मलमलकर नहला दिया। इसके बाद अपने हाथ रगड़ रगड़कर साफ किए। मगर मनोहरके हाथोंसे फिर भी दुर्गन्धि आती रही। वहमकी चिकित्सा धन्वन्तरीके पास भी नहीं। डाक्टर गंगाराम घरको वापस आए तो प्रेमदेवीने रास्ता रोक लिया, और दिन भरकी सारी बात सुनाकर कहा—मैं अन्दर न जाने दूँगी, न रातको यहाँ सोऊँगी। मकान बदल लो।

डाक्टर गंगाराम दिनभर काम कर करके थक कर लौटे थे, नम्रतासे बोले—इस समय क्षमा करो। प्रातःकाल सबसे पहले यही काम करूँगा।

प्रेमदेवीने आँखोंमें आँसू भरकर कहा—न सही, परन्तु मेरे मनमें जाने क्या क्या हो रहा है?

डाक्टर गंगारामको प्रेमदेवीसे अत्यन्त प्रेम था। उसका रोना उनसे देखा न गया, हँसकर बोले—अच्छा अभी जाता हूँ, परन्तु लाहौर शहरमें नया मकान मिलना इतना आसान नहीं!

बाहर निकले तो होंट चबाकर बोले—इन कमबख्त चूहोंको क्या हमारे घरमें ही मरना था?

२

भोर हुई तो डाक्टर गंगारामका असबाब गाड़ीमें लदकर दूसरे मोहल्लेको जा रहा था और प्रेमदेवी मुस्करा मुस्कराकर नए घरको सजा रही थी। उसे घर-गृहस्थीका सामग्री सजा-सजाकर रखनेका चाव था। प्रायः वह सारा सारा दिन इस कामकी भेंट कर दिया करती थी और इसमें इतनी निमग्न होती थी कि खाने तककी सुधि न रहती थी। उसने नौकरसे नये घरको पहले साफ कराया, फिर धुलाया, जाला उतारा, आलमारियोंकी धूलि झाड़ी, दीवारोंपर कपड़ा फेरा, फिर फर्शपर चटाई बिछाई, फिर दरी डलवाई। दीवारोंपर चित्र लटकाए, मेजको बीचमें रखवाया, आसपास कुर्सियाँ रखवाईं। बैठकके साथ जो कमरे थे, उनपर पर्दे लटकाए। जब यह काम हो चुका तो रसोईकी ओर ध्यान किया। जो जो चीज़ें जहाँ रखने योग्य थीं, वहाँ रक्खीं। इसके बाद शयनागारको सजाया। दाल आटा चीनी भण्डारमें रक्खा। इस कार्य्यसे फुरसत पाते पाते पाँच बज गए। नौकरने साग-भाजी बना ली, प्रेमदेवीने जाकर सबका नमक आदि देखा और फिर एक भाजी-तरकारी अपने हाथसे तयार करके बाहर रक्खी ही थी कि डाक्टर साहब आते दिखाई दिए।

प्रेमदेवीने बालकोंकेसे भोलेपनके साथ उनका हाथ पकड़ लिया, और एक कमरा जाकर दिखाया। यह आपकी बैठक है। यह मेरा रसोई है। यह शयनागार है। यह भण्डार है।

गंगाराम अपनी पत्नीकी कार्य्य-दक्षता पर बड़े प्रसन्न हुए और मुस्कराकर बोले—थैंक यू।

प्रेमदेवीने मुस्कराकर गर्दन झुका ली और कहा--आप तो ठट्ठा करते हैं, चलिए चल कर भोजन कर लीजिए। मनोहरने प्रातःकालसे कुछ नहीं खाया, जल्दीमें थोड़ासा हलवा बना दिया था।

चलो! आज मेरी भी भूख बेतरह चमक रही है।

पति, पत्नी और बालक तीनों रसोई घरमें गए, और भोजन करने लगे। डाक्टर साहब स्वभावके रसिक थे। बात बात पर हँसते थे, और हँसाते थे। उनकी हँसीसे पड़ोसियोंको मालूम हो गया कि उनके पड़ोसी कैसे आदमी हैं? परन्तु जब जब भी प्रेमदेवीका ध्यान पुराने घरकी ओर जाता, तब तब ही उसके नेत्रोंके सन्मुख मरा हुआ चूहा फिर जाता और बदबू आने लगती। इसके साथ ही हँसी भूल जाती और प्रेमदेवी चुप हो जाती।

इतनेमें बाहरसे किसीने पुकारा। नौकरने जाकर देखा, और वापस आकर कहा—तारवाला है।

गंगारामने धीरता से कहा—ले आओ।

नौकर तार ले आया।

हस्ताक्षर करके तार खोला और उसे जल्दी जल्दी पढ़ डाला।

प्रेमदेवीने घबराकर पूछा—कहाँसे आया है?

डा० —बटालेसे।

प्रेमदेवीका कलेजा धड़कने लगा, मनमें सैकड़ों विचार एकबारगी घूम गए। घबराकर बोली—खैर तो है?

डा०—तुम्हारी माताजी बीमार हैं, तुम्हें बुलाया है।

प्रेमदेवीकी माता सदा बीमार रहती थी, इसलिए अनुमानसे उनका अधिक समयतक जीवित रहना कुछ असम्भव प्रतीत हुआ। भाई बहन थे, उनका भी ध्यान आया। माता बीमार है, तो वे क्या करते होंगे। उनके भोजन आदिका क्या प्रबन्ध होगा—यह सोचकर प्रेमदेवी रोने लगी।

गंगारामने उसके आँसू पोंछकर कहा—रोती क्यों हो? आज ही चली जाओ।

प्रेमदेवीने ऐसी दृष्टिसे पतिकी ओर देखा जिसमें प्रेम और कृतज्ञताका रंग झलकता था।

गंगारामने पूछा—किस गाड़ीसे जानेका इरादा है ?

प्रेमा०—प्रातःकाल भेज दो।

डा०—नौकर साथ ले जाना। मुझे फुरसत नहीं, नहीं तो मैं ही चला चलता।

३

शामको नौकर वापस आया तो गंगारामको पता लगा कि प्रेमदेवीकी माताको प्लेग है।

गंगाराम सन्नाटेमें आ गए।

वे बहुत नेक-दिल आदमी थे और अपने सदाचारके लिए दूर दूर तक मशहूर थे। उनके यार-दोस्त उनकी शराफ़तपर मुग्ध थे। गंगारामका सबसे अधिक बल इसपर होता था कि झूठ बोलनेसे मनुष्यको बचना चाहिए, नहीं तो धर्मकी नैयाके रहनेकी कोई सम्भावना नहीं। प्रायः कहते कि अधर्मकी सेनाका सेनापति झूठ है। जहाँ झूठ पहुँच जाता है वहाँ अधर्मराजकी जीत हो जाती है। वे शराब पीने, जुआ खेलने और मांस खानेकी अपेक्षा झूठ बोलनेको बड़ा पाप समझते थे। उनका विचार था कि गुनाहगार सँभल सकता है, मगर जिसके हृदय और जिह्वामें एकता नहीं उसके सच्चरित्र बननेकी और पापसे समुद्रसे बचनेकी कोई आशा,—कोई सम्भावना नहीं। इन विचारोंपर गंगाराम दृढ़तासे चलते थे और उनके मिलनेवालोंको पूरा विश्वास था कि गंगाराम मरते मर जायँगे परन्तु झूठ बोलनेको कभी तैयार न होंगे।

जब नौकरने यह कहा कि प्रेमदेवीकी माता प्लेगसे बीमार है तो गंगारामके होश उड़ गए। उन्होंने सोचा अब क्या करना चाहिए। प्लेगके चूहेसे घर छोड़ भागी थी। अब प्लेगके रोगीको कैसे Attend करेगी ? और यह तो दुनिया जानती है कि यह रोग दुर्बल हृदयोंको

उड़कर चिमटता है। अगर तारमें लिखा होता तो कदापि न भेजता। परन्तु अब तो वह जा चुकी है, क्या किया जाय? प्रेमदेवीके साथ उनको अत्यन्त प्रेम था, उसने कई भयावने विचार उनके सन्मुख रक्खे। गंगाराम अधीर हो उठे। उनका दिल सहम गया। कमरेमें इधर-उधर टहलते थे, और सोचते थे, क्या करें? मगर कोई रास्ता न सूझता था। चारों तर्फ़-भँवर थे, नाव कहीं भी न थी।

एकाएक हृदयमें एक ख़यालने सिर उठाया। परन्तु गंगारामने दबा दिया। फिर सोचने लगे और क्या करें। प्रेमदेवी मेरे जीवनका प्रकाश और प्रकाशका जीवन है, उसके लिए क्या होना चाहिए। गंगाराम चिरकाल तक विचार-सागरमें हाथ पैर मारते रहे, परन्तु कोई किनारा न मिला। सर्वनाशकी चट्टानोंसे बचकर शान्ति और कल्याणके तटपर लगनेका कोई उपाय न देख पड़ा। इस निराशामें फिर उसी काले विचारने अपनी सहायताका हाथ बढ़ाया, परन्तु गंगारामने उसे पकड़नेका साहस न किया।

आधी रात गुज़र गई। दुनिया निद्राकी गोदमें विश्राम ले रही थी, मगर आकाशकी सभा जगमगा रही थी। तारे हँस हँस कर आँख-मिचौनी खेल रहे थे। गंगारामकी आँखोंमें नींद न थी। वे उसी विचारमें निमग्न थे और सोच रहे थे कि इस विपत्तिसे किस प्रकार उद्धार हो। पापका विचार फिर सामने आया, मगर गंगारामने फिर घृणासे मुँह फेर लिया।

इसी तरह रातके चार बज गए। तारे एक एक करके आँखोंसे ओझल होने लगे, मानों सारी रात जागकर उनको भी नींद आ गई थी। परन्तु गंगाराम अब भी जाग रहे थे, और सोच रहे थे कि इस असमञ्जससे किस प्रकार निकलूँ। मनने फिर उत्तर दिया, परन्तु गंगारामने फिर अस्वीकार कर दिया।

दिन निकल आया। गंगारामके आँगनमें एक पेड़ था। उसपर

पंछियोंने संगीत छेड़ रखा था। परन्तु गंगारामका उधर ध्यान न था। वही काला विचार फिर सामने आया। इस बार गंगारामने उसपर ध्यान दिया। पानीकी बूँद बार-बार गिरे तो पत्थरमें भी छेद कर देती है।

गंगारामने सोचा, इसमें हर्ज ही क्या है। झूठ बुरा इस लिए है कि इससे दूसरे लोगोंको हानि होती है। लेकिन अगर इससे नष्ट होता हुआ एक घर बच जाय तो इसमें पाप क्या है। पाप वह है जिससे किसीका मन दुखे। और इसमें क्या है? तार दे देता हूँ कि मैं बीमार हूँ, प्रेमदेवीको भेज दो। वह यहाँ आ जायगी। हृदयकी कमजोर है, उसका प्लेगके रोगीसे अलग रहना ही अच्छा है। मैं वहाँ जाकर उसकी माताका इलाज करूँगा। गंगारामने यही तै किया।

रात गुजर जानेके बाद, धर्मपर मोहकी और कर्त्तव्यपर स्वार्थकी जीत हुई। गंगारामने बटाले तार दिया। बरसोंकी पूँजीपर एक पलमें पानी फिर गया।

४

काले कपड़ेपर सैकड़ों धब्बोंका पता नहीं लगता, मगर सफ़ेद पर एक ज़रा-सा दाग भी हो, तो हृदयमें अदचन उत्पन्न करता है। साधारण लोग रातदिन झूठ बोलते हैं, उनका अन्तःकरण जरा नहीं बोलता। गंगारामने जीवन-भरमें एक झूठ बोला। परिणाम यह हुआ कि अन्तः-करणने धिक्कारना आरम्भ कर दिया। तार देनेके साथ ही उनको ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे वे आकाशसे भूमिपर गिर पड़े हैं और सारा संसार उनकी ओर घृणा और करुणाकी आँखों देख रहा है। अब सोचते थे, मैंने यह क्या कर दिया? ज़रा-सी बातके लिए तार दे दिया। इससे हृदयपर जो कुसंस्कार पड़ा है, उसे कैसे दूर करूँगा! हृदय-मन्दिरको बरसोंके परिश्रमसे स्वच्छ और निर्मल बनाया था, एक पलमें मलिन कर दिया। जैसे मूर्ख बालक नहा धोकर मिट्टीमें लेट जाए।

मनकी डाँट मामूली न थी। गंगाराम काम न कर सके। सारा दिन दुःख चिन्ता और पश्चात्तापकी भेंट हो गया। सायंकालको चार दिनकी छुट्टीके लिए अरजी लिख भेजी और रातकी गाड़ीसे बटालेकी ओर चले।

रास्तेमें सोचते थे, कि वहाँ जाकर क्या कहूँगा? अपनी भूल किस तरह स्वीकार करूँगा? जो भूल हो चुकी है, उसके लिए क्या उज्र पेश करूँगा? जो सिर आज तक गौरवसे नीचे नहीं झुका, उसे कैसे झुकाऊँगा? आँखोंकी लज्जा कैसे छिपाऊँगा? स्त्रीके सम्मुख सत्यभाषणकी प्रतिज्ञा की हुई है। वह जब भोली दृष्टिके साथ आँखोंसे आँखें मिलाकर, केवल इतने ही शब्द कहेगी कि 'क्या प्रतिज्ञा समाप्त हो चुकी,' तो कैसे सहूँगा? विचार हुआ, वापस मुड़ चलूँ। प्रेमवती तारको सत्य समझकर लाहौर आ जायगी, तो उसके सम्मुख भूल स्वीकार कर लूँगा और सब कुछ मान लूँगा। प्रेमवतीका हृदय प्रेमका स्रोत है। मेरे थोड़ेसे करुण शब्दोंको सुनते ही छलक उठेगा, और मेरा दोष उसमें बह जायगा। फिर ख़याल आया, कि यह ठीक नहीं। एक दिन किसीने हँसी-हँसीमें कह दिया कि गंगाराम बीमार हैं, तो सारा दिन रोती रही थी। अब जब सुनेगी कि मुझे प्लेग हो गई है, तो उसकी क्या दशा होगी? चीखें मारेगी। शायद पछाड़ खाकर गिर पड़े। यह बात बुरी है। जितनी जल्दी हो सके उसे बता देना चाहिए कि तार झूठा है।

ठंडी हवा चल रही थी। आकाशमें मेघोंके समुद्र उमड़ रहे थे। सड़कके किनारे किसानोंके बालक आनन्दमें गीत गा रहे थे।

हर एक क्षण गाड़ी बटालेके निकट पहुँच रही थी, मगर गंगाराम अपने मार्गसे दूर जा रहे थे।

५

दस बजे गाड़ी बटाले पहुँची। गंगाराम जल्दीसे नीचे उतरे। परन्तु बाहर आकर उनका हृदय बैठ गया। आँखें प्रेमवतीके सामने

कैसे करूँगा ? इस प्रश्नसे उनका दिल काँप गया। आदमीको जब कभी प्रयत्न करते हुए भी आशाकी झलक दिखाई नहीं देती तो वह अपने आपको दैवके हाथोंमें छोड़ देता है। तैराकके हाथ पैर थक जाते हैं, तो वह तैरनेका यत्न भी त्याग देता है। गंगाराम भी जब इस उलझनको सुलझा न सके तो उन्होंने मनको इस विचारसे शान्त कर लिया कि समय पर जैसा होगा देखा जायगा। यह सोचकर वे शहरकी ओर चल पड़े। सुहावना मास था। गाड़ियाँ ब्याह शादियोंमें रुकी हुई थीं, इस लिए गंगारामको पैदल चलना पड़ा। धीरे धीरे छड़ी हिलाते हुए चले जा रहे थे कि एक बैल भागता हुआ सामनेसे आता दिखाई दिया। वर्षा हो चुकी थी, सड़कपर फिसलन थी, खेतोंमें पानी था। गंगारामने इधर उधर होनेका यत्न किया, परन्तु कोई मार्ग न मिला। बैल निकट आ गया। उसे झुँझलाया हुआ देखकर गंगारामने बचनेके लिए एक ओर छलाँग लगा दी। जल्दीमें पहले देख न सके थे, उधर कुँआ था। परन्तु अब क्या हो सकता था ?

गंगाराम कुँएमें गिर गए।

दैवयोगसे कुँआ गहरा न था और पानीसे खाली था। वर्षाके कारण उसमें थोड़ासा जल भर गया था ; परन्तु वह इतना अधिक न था, कि आदमीको डुबा सकता। गंगाराम देर तक अचेत पड़े रहे। धीरे धीरे उनको पाँच बजेके लगभग सुधि आई। उस समय मुसाफिर स्टेशनको जा रहे थे। कई एक बारातें वापस जा रही थीं। उनकी मधुर संगीत-लहरीसे प्रमत्त हुआ वायु बटोही जनोंको अनुराग और आनन्दका सन्देशा देता था। गंगाराम खड़े हो गये और कपड़े निचोड़ कर बाहर निकलनेकी चेष्टा करने लगे। परन्तु कुँआ गहरा न होने पर भी इतना छोटा न था कि वे छलाँगकर बाहर निकल सकते। गंगाराम चुपचाप वहीं बैठे रहे। इस तरह आध घण्टा और बीत गया। साढ़े पाँच बज गये। छः बजे गाड़ी रवाना होती थी। इतनेमें

ऊपरसे किसी स्त्रीका शब्द सुनाई दिया—मुल्कराज ! देर तो नहीं हो गई ? उत्तरमें किसी नवयुवकने कहा—नहीं, अभी एक घण्टा बाकी है। गंगारामका कलेजा धड़कने लगा। यह आवाज प्रेमवतीकी थी, जो अपने भाईको साथ लिये स्टेशनको जा रही थी। गंगारामने पागलोंकी तरह चिल्लाना आरम्भ कर दिया—मुल्कराज, जरा इस कुँएकी ओर आओ। टाँगे और इक्केवाले दौड़ रहे थे। प्रेमवती और मुल्कराज जल्दीमें थे। गंगारामका चिल्लाना किसीके कानतक नहीं पहुँचा, कुँएकी दीवारोंसे टकराकर शब्द फिर वापस चला आया। गंगारामने सिर पीट लिया।

साढे छः बजेके लगभग एक मुसाफिरने सड़कके किनारेसे जाते हुए देखा, कि कुँएमेंसे कोई ईंटें उछाल रहा है। उसने झाँक कर कहा—तुम कौन हो ?

गंगारामने उत्तर दिया—भूलसे कूएँमें गिर गया हूँ भाई। परमात्माके लिए बाहर निकालो।

आदमी भला था। अपना काम छोड़कर पहले इधर उधरके किसानोंको बुला लाया। उन्होंने रस्सा डालकर गंगारामको बाहर निकाला। मगर गाड़ी जा चुकी थी।

इधर प्रेमदेवी गाड़ीमें सवार हुई तो उसके मुँहपर हवाइयाँ छूट रही थीं, और रंग उड़ा जा रहा था। देवताओंसे प्रार्थना कर रही थी, देवियोंसे मन्नतें मान रही थी और दानकी प्रतिज्ञा कर रही थी कि गंगाराम कुशलसे हों। बहुतेरा धीरज बाँधा, परन्तु नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बह निकली। बच्चेको गलेसे लगाकर रोने लगी। इस कमरेमें एक और स्त्री भी बैठी हुई थी, जिसकी गोदमें प्रेमदेवीके पुत्रकी आयुका बालक था। प्रेमदेवीको रोते देखकर, उसके पास चली गई और बोली—बहन ! रोती क्यों हो ?

उसने कृतज्ञता भरे शब्दोंमें उत्तर दिया—क्या कहूँ बहन ! मेरे

पति बीमार हैं।

"क्या रोग है ?"

"यह नहीं लिखा।" इससे अधिक न कह सकी। मगर बिलख-बिलखकर रोने लगी।

उस अपरिचित स्त्रीने पूछा—तुम्हें क्या पत्र आया है ?

प्रेमवतीने उत्तर दिया—नहीं तार !

वह स्त्री पढ़ी लिखी थी। उसने समझा, सम्भव है तारसे कुछ और पता मिल जाय। अथवा तार पढ़नेवालेने ही भूल की हो, इस विचारसे उसने कहा—तार तुम्हारे पास हो तो ज़रा दिखा दो। इस समय गाड़ी अमृतसरके स्टेशनसे चलनेको थी। प्रेमवतीने तार उस स्त्रीके हाथमें दे दिया। इतनेमें उसने देखा कि उसका बच्चा प्लेटफार्मके दूसरे सिरे पर घूम रहा है। तार हाथमें लिये हुए ही गाड़ीसे उतरी, और घबराहटमें बच्चेकी ओर चली। दुर्भाग्यसे उसी प्लेटफार्मपर गाड़ी आती हुई दिखाई दी। बच्चा घबराकर पीछे हटना चाहता था, कि मुँहके बल लाईनपर गिर पड़ा। उसकी माँ पागलसी होकर उधर दौड़ी। गाड़ी केवल थोड़ेसे फासले पर थी। वह उमड़कर बच्चेकी ओर लपकी। इतनेमें गाड़ी ऊपरसे फिर गई और माँ पुत्र दोनों कुचल गए।

६

शामकी गाड़ीसे गंगाराम अमृतसर पहुँचे, तो हरएक आदमीकी ज़बानपर यही चर्चा थी। मरनेको लोग नित्य मरते हैं, कोई पर्वाह नहीं करता। मगर स्टेशन पर देखते देखते एक सुन्दरी युवतीका बच्चेके पीछे पीछे मृत्युके मुखमें चले जाना साधारण घटना न थी, जिस पर लोग ध्यान न देते। साँझ तक यह चर्चा सारे अमृतसरमें फैल गई। लाशोंके आसपास लोगोंका जमघटा लगा हुआ था और लोग अपनी अपनी प्रकृतिके अनुसार बातचीत कर रहे थे। राजकर्म-

चारियोंने पता लगानेकी बहुत चेष्टाएँ कीं, कि यह स्त्री कौन थी, परन्तु कुछ पता न लगा। स्त्री और बालकके चेहरे इस तरह बिगड़ गये थे, और शरीर इस भाँति कुचले गये थे कि उनकी पहिचान होनी असम्भव थी। केवल एक वस्तु ऐसी थी, जिससे कुछ पता लगनेकी सम्भावना थी, और वह एक तार था, जो मरती हुई स्त्रीके हाथमें पाया गया था।

गंगारामने यह घटना सुनी तो हैरान होकर गाड़ीसे उतर आए और अस्पताल पहुँचे। वहाँ उस समय मेला लगा हुआ था और लोग तरह तरहकी बातें कर रहे थे। गंगारामने एक आदमीसे पूछा—यह स्त्री कौन थी?

उस आदमीने गंगारामको सिरसे पैरोंतक देखा और फिर धीरेसे कहा—इसका अभीतक पता नहीं लग सका।

"क्या कोई वस्तु ऐसी नहीं, जिससे कुछ पता मिल सके?"

"एक तारके सिवा और कोई चीज़ नहीं।"

तारका नाम सुनकर गंगारामके कान खड़े हुए। घबराकर बोले—वह तार किसके पास है?

एक और आदमीने नम्रतासे उत्तर दिया—सब-इन्स्पैक्टर साहबके पास। वे सामने खड़े हैं।

गंगाराम बिजलीकी तरह सब-इन्स्पैक्टरके पास पहुँचे और जल्दीसे बोले—क्या आप कृपा करके वह तार जो इस स्त्रीके पाससे मिला है, दिखला सकते हैं?

सब-इन्स्पैक्टरने कहा—क्यों नहीं?

गंगारामने तार लिया, और पढ़नेके साथ ही उनके मुँहका रंग उड़ गया। यह तार वही था जो उन्होंने प्रेमवतीको लाहौरसे दिया था। एक क्षणके लिए तो वे अपने आपको सर्वथा भूल गये और उनको ध्यान तक न रहा कि मैं कौन हूँ। परन्तु इसके बाद उन्होंने जाना कि मुझपर वज्र टूट पड़ा है और स्त्री पुत्र दोनों एक ही दिनमें

हाथसे निकल गए हैं। बहुतेरा धीरज बाँधा, परन्तु आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह निकली। रोते रोते बोले—इन्स्पैक्टर साहब, यह मेरी स्त्री थी।

स्त्री और बच्चेकी मौत कुछ कम हृदय-बेधक न थी।

गंगारामकी सुन्दर और भोली तबीयत देखकर देखनेवालोंकी चीखें निकल गईं। जब गंगारामने लाशोंको गलेसे लिपटाकर हृदय-बेधक करुण विलाप किया, तो इन्स्पैक्टर भी रोने लगे। डाक्टर भी रोने लगे। लोग भी रोने लगे। चारों ओरसे सिसकियोंके सिवा कुछ सुनाई नहीं देता था।

गंगारामको प्रेमदेवीपर असीम स्नेह था। उन्होंने सोचा, अब संसार मेरे लिये अंधकार है। अब विरक्त होकर जीवनके शेष दिन पूरे करने चाहिएँ। प्रेमदेवीके बिना संसारमें न प्रकाश है न मिठास, इसलिए इसमें बसना व्यर्थ है। यह सोच कर वे दाहकर्मके पश्चात् हरिद्वारको रवाना हो गए।

७

ऊपरकी घटनाको तीन वर्ष बीत गए, परन्तु गंगारामका कोई पता न चला। प्रेमदेवीके लिए संसार काला हो गया। जो जगत् प्रसन्नता, आशा और आनन्दसे परिपूर्ण था, गंगारामके बिना वही शून्य और उदासीन हो गया। सूर्य्य उसी प्रकार निकलता था। आकाशपर मेघ उसी प्रकार दौड़ते थे। चन्द्रमाकी किरणोंमें वही पहली-सी सुन्दरता और शीतलता थी, परन्तु प्रेमदेवीके लिए दुनियामें कुछ भी न था। वह सुन्दरताकी मूर्त्ति सूख कर काँटा हो गई थी। उसका मुख-मण्डल पीला पड़ गया था। प्रत्येक पल चिन्तामें डूबी रहती। प्रातःकाल सोचती, शायद आज उनका पता लगे। दिन बीत जाता, परन्तु कोई ख़बर न मिलती। रात गुज़र जाती परन्तु कोई पता न चलता, वह घण्टों उनकी फोटो लेकर बैठी रहती। पहले उसे देखती, फिर बातें करती, फिर पुराना जमाना उसकी आँखोंमें फिर जाता। हाय, वे

दिन कैसे थे, जब मैं सन्ध्या समय उनकी प्रतीक्षामें दरवाजेपर खड़ी रहती थी। वे आते तो जल्दीसे छाता पकड़ लेती और वे मुस्करा कर मुझे गलेसे लगाकर मेरा मुँह चूम लेते। उस आलिङ्गनमें जो आनन्द, जो प्रेम और जो आदर था, वह अब कहाँ चला गया? उनके चेहरेपर जो शान्ति थी, मस्तकपर जो तेज था, आचारमें जो दृढ़ता थी, उनके स्मरणसे प्रेमदेवीके हृदयपर आघात लगता, और वह घंटों रोती रहती। लाहौरसे बटाले चली गई थी। मा धीरज बँधाती थी, पिता प्यार करते थे। उनके कहनेसे रोना बन्द कर देती, परन्तु नेत्रोंके समान मन वशमें न था। आँखें चुप हो जातीं, परन्तु मन बराबर आँसू बहाता रहता।

प्रेमदेवीके मा-बापको मालूम हो चुका था, कि गंगारामने एक स्त्रीकी लाशको प्रेमदेवी समझ लिया था, और इसी कारण वे साधु हो गये हैं। परन्तु अब कहाँ हैं? कैसे हैं? क्या करते हैं? इसका कुछ ठीक न था। उन्होंने अपनी ओरसे प्रयत्न करनेमें कुछ उठा न रक्खा, मगर गंगाराम न मिलने थे न मिले। प्रेमदेवी बीमार रहने लगी।

एक दिन प्रातःकाल था। प्रेमदेवी नहा धोकर अपने कमरेमें बैठी गंगारामकी तसवीर देख-देखकर सुखका अतीत समय याद कर रही थी कि गलीमेंसे किसी साधुके गानेकी आवाज़ सुनाई दी —

राधा बिन बिकल बिहारी।

शब्द साधारण थे, परन्तु वियोगियोंके हृदयोंमें आग लग गई। वियोगका चित्र नेत्रोंके सामने खिंच गया। जिस जिस स्त्रीका पति परदेसमें था, उसीकी आँखोंसे आँसू बहने लगे और प्रेमकी बातें मनमें फिरने लगीं। स्त्री और पुरुष सब मगन होकर सुनने लगे। साधु गा रहा था —

राधा बिन बिकल बिहारी।

प्रेमदेवीके पास उसकी बहन रामप्यारी बैठी तसल्लियाँ दे रही

थी। उससे प्रेमदेवीने कहा कि—बहन, इस साधुके स्वरमें कोई जादू है, बुला तो, जरा गाना ही सुन लूँ।

तीन वर्षके लम्बे कालमें यह पहला समय था कि प्रेमदेवीने आग्रह-से कोई बात की। रामप्यारीने साधुको अन्दर बुला लिया, और कहा—महाराज, आप रागविद्याके देवता हैं। मेरी बहनको भी इस विद्यासे कुछ प्रेम है। वह आपका स्वर सुनकर आपसे कोई चीज़ सुनना चाहती है। कृपा करके यही पद फिर सुना दीजिए।

साधु बहुत शान्त स्वभाव और सुन्दर था। उसने मुस्कराकर कहा—माई, हम विद्या क्या जानें? मन बहलानेको कुछ गा लेते हैं। अगर आपकी इच्छा है, तो सुन लो। यह कह कर साधुने फिर तंबूरा उठाया और गाने लगा—

राधा बिन बिकल बिहारी।

लोग बुत बन गये। अपना आपा भूल गये, स्थान भूल गये, समय भूल गये। उनकी आँखें उस दृश्यका आनन्द लूटने लगीं, जब कृष्ण कन्हैया राधाके वियोगमें व्याकुल फिर रहे थे। दरो दीवारसे यही आवाज आने लगी—

राधा बिन बिकल बिहारी।

प्रेमदेवी चिककी ओटमें बैठी हुई सि॰ मार रही थी, और लोग मंत्रमुग्ध बैठे सुन रहे थे। दूर दूर तक यही आवाज जा रही थी—

राधा बिन बिकल बिहारी।

एकाएक प्रेमदेवी चिक उठा कर बाहर निकल आई और साधुके चरणोंमें गिर कर बोली—महाराज, अब यह कपट कायम नहीं रह सकता। दुखियारीको और दुःख न दो।

इस समय तक रामप्यारी और उसके माता पिताकी आँखोंपर भी पर्दा पड़ा हुआ था। यह देखकर जैसे उनका स्वप्न टूट गया, प्रेमके जोशमें चिल्ला उठे—

"गंगाराम ! गंगाराम !!"

साधुने सास श्वसुरके चरणोंपर गिरकर कहा—मुझे क्षमा करो, मेरे कारण आपको बहुत दुःख पहुँचा है।

रातको प्रेमदेवीने प्रेमके आँसू बहाते हुए कहा—परमेश्वरका सौ बार धन्यवाद है, कि यह बिपदा दूर हुई।

गंगारामने उत्तर दिया—मैंने थोड़ासा झूठ बोला था। यह उसका फल है। ईश्वर जाने, लोग किस प्रकार दिन-रात झूठ बोलते रहते हैं।

पापका पैसा

१

आदमपुरका हरभगवान कई वर्षोंकी मेहनतके बाद पटवारी बना।
म्मेदवारीके समयमें उसने बहुत दुख उठाए और अनेक विपत्तियाँ
ाहीं, परन्तु संकल्पका दृढ़ था, शिलाके समान अचल रहा। बूढ़े माता
पताने लाख सिर पटका, सैकड़ों यत्न किए, परन्तु धीरप्रकृति पुत्रने
ना अनसुन कर दिया। जब बूढ़ी माँ फटी पुरानी सूती धोतीको देख
र आँसू बहाती—जब बूढ़ा बाप बासी और सूखी चपातियाँ खा खा
र दुखी हो जाता और गुस्से होकर अपने मूर्ख पुत्रको खरी खरी
ुनाता तो वह निरपेक्ष होकर उत्तर देता—दो चार कड़वे घूँट बाकी
हैं, फिर देखना अन्दर बाहर रुपया ही रुपया हो जायगा। दुनिया
ानती है, क्लर्क बाबुओंके हाथोंमें पैसा नहीं ठहरता, मगर पटवा-
रियोंकी स्त्रियाँ सोनेसे लदी रहती हैं। आप दोनों इस बात पर ध्यान
हीं देते। मगर पटवारीके रुपयामें बड़ी बरकत है।

हरभगवान केवल समयकी प्रतीक्षा ही नहीं करता था, प्रतीक्षाके साथ साथ बराबर माला भी जपा करता था। वर्षा हो या जाड़ा, प्रातःकाल ठंडे पानीसे स्नान करता और सन्ध्या समय मन्दिरमें दीपक जरूर जलाता। आखिर भगवान ने हरभगवानकी सुनी, और उसे उसकी तपस्याका फल दिया—हरभगवान पटवारी बन गया, गोया प्यासेको पानी मिला।

इस खुशीमें उसने रातको ऋणके रुपयेसे यार-दोस्तोंको एक बड़ा भोज दिया। लोग कहते थे, कि हरभगवान ने जैसा दिल खोलकर उस दिन खर्च किया, वैसा अपने लड़केके पैदा होने पर भी न किया होगा। भोजनके बाद हरभगवानने मूँछोंपर ताव दिया और कहा—मुझे निर्धन जानकर जो मुझको क्षुद्र समझते रहे हैं अब मैं उनसे समझूँगा। गाँवोंमें दाने दानेको तरसता रहा; अब देखता हूँ कौन माईका लाल मेरे सामने आँख उठानेका साहस करता है।

२

इसी गाँवमें गणेशदास नामके एक धनी रहते थे। उनके पास धन-की बहुलताके साथ भलमनसाई तथा धार्मिक भावोंकी भी कमी न थी। इनसे और हरभगवानसे घनी मित्रता थी। हरभगवान जब नौकरीके लिए धूनी रमाए बैठा था तो गणेशदास ही उसके घरकी सुध लिया करते थे। हरभगवानके माँ-बाप थे तो निर्धन, मगर आत्म-वैभव या आत्म-सम्मानके धनसे खाली न थे। यही कारण है कि भूखे रहते थे, प्यासे सोते थे परन्तु किसीके आगे हाथ न पसारते थे। गणेशदास इस बातको जानते थे, इसलिए प्रत्यक्षमें उनकी सहायता करनेका उन्हें साहस न होता था। रातके अन्धेरेमें जाते और चुपकेसे दस पाँच रुपये हरभगवानके आँगनमें फेंक आते। इस तरह गणेशदासकी उदारतासे दस वर्षका कठिन समय गुजर गया। नहीं तो निर्धन

कुटुम्ब भूखा-प्यासा मर जाता। हरभगवानकी माता और स्त्री इस अदृष्ट सहायकको दिन रात आशीष देती रहती। परन्तु वह कौन था इसका पता हरभगवानके सिवाय और किसीको नहीं था।

पटवारी होनेके साथ ही हरभगवानकी स्थितिमें परिवर्त्तन हुआ। विनयका स्थान अभिमानने और दरिद्रताका स्थान ऐश्वर्यने ले लिया।

जो नेत्र खाने-पीनेके लिए किसी आश्रयको ढूँढ़ते थे वे अब आकाशमें विचरते हुए सुखका स्वप्न देखने लगे। क्षमाके बन्ध ढीले हुए और सहनशीलताकी बागडोर हाथसे छूटी। बात बातमें मुखसे गालियाँ निकलने लगीं। नौकरीसे सिरमें बड़प्पनका विकार आ गया। दिनरात रिश्वत खाने लगा। रिश्वत खानेको तो बहुत लोग खाते हैं परन्तु सोच समझकर। हरभगवानने दोनों हाथोंसे लूटना शुरू किया। वह जमींदारोंको भरे बाजार धमका देता था और दिन दहाड़े लोगोंके सामने रिश्वत लेनेमें न झिझकता था। लोग पीठपर गालियाँ देते थे परन्तु मुँहपर चूँ न करते थे।

गणेशदास यह सब कुछ देखते थे और मन ही मन कुढ़ते थे। मगर बुद्धिमान आदमी थे, साफ शब्दोंमें कहना न चाहते थे। एक आध बार उन्होंने बातों बातोंमें समझानेकी चेष्टा की, परन्तु लोभके भूतने हरभगवानको अन्धा और बहरा बना दिया, इस लिए कुछ फल न निकला। आखिर उन्होंने साफ-साफ कहनेका विचार किया। एक दिन वे इसी विचारसे उसके घर गये। हरभगवान नये पलङ्गको देख रहा था और सुखके मदमें झूम रहा था। हँसता हुआ बोला—आइए शाहजी! पलंग देखिए।

गणेशदास इस सुअवसरको पाकर एक खाटपर बैठ गये और कहने लगे—बहुत सुन्दर है, कितनेको खरीद किया?

"साढ़े उन्नीसको।"

गणेशदासको बात कहनेका अवसर मिला। बोले—एक

बात कहूँ, बुरा तो न मानोगे !

हरभगवानने आश्चर्यके साथ उत्तर दिया—बुरा माननेकी क्या बात है ? जो कहना चाहें निश्चिन्त होकर कह डालें ।

गणेशदास थोड़ी देर चुप रहे और फिर धीरेसे बोले--तुम्हारी तनख्वाह कितने रुपए हैं ?

"बारह रुपए ।"

"उसमें ये फ़िजूलखर्चियाँ कबतक चलेंगी ?"

"ऊपरकी आमदनी भी तो है ।"

गणेशदासने हलकी-सी फटकार दी—भले आदमी ! तुम पटवारी बने हो कि गणेश देवताके द्वारपाल ? चार स्त्रियाँ इकट्ठी होती हैं तो तुम्हारी कथा खुल जाती है । बालक खेलते हैं तो तुम्हारे पटवारीपनका स्वाँग रचते हैं । जमींदार तुमसे दुःखी हैं, जाट तुम्हारे नामसे डरते हैं ! नौकरी सब लोग करते हैं, परन्तु तुम्हारी तरह नहीं कि सरपट पाप-क्षेत्रमें दौड़ लगाने लगें । ज़रा सोचो तो सही, क्या रुपया ही संसारमें सब कुछ है ?'

हरभगवानको सुपनेमें ऐसी आशा न थी कि कोई आदमी गाँवमें उसको इस प्रकारकी बातें कह सकता है । बात तो ऐसी थी कि वह सुनकर लज्जित होता और अपना सुधार करता परन्तु वह उलटा कड़ककर बोला—नौ सौ चूहे खाकर बिल्ली हजको चली । यह उपदेश आप किसी समाजके प्लेट फार्म पर जाकर अन्धविश्वासी श्रोताओंको सुनाइएगा । वहाँ इसका बड़ा प्रभाव होगा । मैं उन अन्धोंमेंसे नहीं हूँ । जो बर्ताव तुम अपने ही खेतिहरोंके साथ करते हो उसे मैं भी जानता हूँ ।

गणेशदास सन्नाटेमें आगये । उनका विचार था कि हरभगवानपर जो उपकार मैंने किये हैं, उनके बोझसे वह कभी उऋण न होगा और मेरे सामने कभी आँख न उठायगा, मगर उसकी यह तोताचश्मी देख-

कर उनके अन्तःकरणमें एक धक्का-सा लगा। घबरा कर उठे और यह कहते हुए बाहर निकल गए—माफ़ करो, फिर कभी ऐसी भूल न होगी।

३

उस दिनसे हरभगवान गणेशदासका प्राण-लेवा दुश्मन हो गया और उन्हें जिस तिस तरह हानि पहुँचानेमें कटिबद्ध रहने लगा। उनके सम्पूर्ण उपकार उसी क्षण भुला दिये गये और समग्र भलाइयाँ मोरीमें बहा दी गईं। प्रायः सरकारी काम करते समय हेर फेरकर उनकी बातें छेड़ देता और जबतक बीसियों गालियाँ न सुना लेता तबतक सन्तुष्ट न होता। सुननेवाले हाँमें हाँ मिलाते और कहते—जी हाँ, वह सच-मुच ऐसा ही कमीना और गिरा हुआ है, उससे किसीका भला न होगा।

कोई कहता—देखिए न कितना मगरूर है, कभी सलाम करने भी नहीं आता।

पटवारी साहब ऐंठकर मूछोंपर ताव देते और कहते—एक दिन अवश्य वह घमण्डी साहूकार मेरे पैरोंमें लोटेगा।

"परन्तु दया न करना। जब शिकञ्जेमें फँसे तो उसको पता लग जाय कि गन्नेका रस कैसे निकलता है।"

इसी तरह दो वर्ष बीत गए, न गणेशदास ने हरभगवानके पैर पड़ना स्वीकार किया, न हरभगवानका क्रोध शान्त हुआ। मरने परनेमें, भले बुरेमें और झूठ सचमें संग्राम होता रहा, परन्तु दो वर्ष तक कोई परिणाम न निकला। बड़े बूढ़े पटवारीको भड़काते थे, जोशीले नवयुवक साहूकारकी सहायता करते थे और जो इन दोनोंसे बुद्धिमान् थे वे तटस्थ होकर दोनोंका तमाशा देखते थे। कई ऐसे भी थे जो दिनको हरभगवानके पास बैठे उसकी हाँमें हाँ मिलाते थे,

तो रातको गणेशदासके आंगनमें बैठकर हुक्का पीते थे और साथ ही साथ हरभगवानको गलियाँ भी देते जाते थे। संसार में ऐसे आदमियों की कमी नहीं जो फूंकें मारकर आग जलाते हैं, परन्तु जब उसमें से चिनगारियाँ उठने लगती हैं तो दूर भाग जाते हैं, और तमाशा देख-देखकर खुश होते हैं।

४

सन् १९०१ का वर्ष भी कैसा मनहूस था कि उसका ध्यान आ जाने से अब तक रोंगटे खड़े हो जाते हैं। यही वर्ष था जब प्लेग पंजाब में पहले पहल फूटा और सहस्रों घरों का नाम निशान मिट गया। सैकड़ों दुधमुँहें बालक अनाथ हो गये, हजारों स्त्रियाँ विधवा हो गईं और असंख्य कुटुम्ब नष्ट हो गये। पहले पहले तो आदमपुर सुरक्षित रहा और लोगोंने कोशिश की, कि प्लेगपीड़ित स्थानोंसे लोग ग्रामों के अन्दर न आने पावें; परन्तु यह प्रबन्ध चिरकाल तक स्थिर न रह सका।

नम्बरदारका एक सम्बन्धी जालन्धरमें रहता था। बीमारी शुरू हुई, तो नम्बरदारने उसे आदमपुर बुला भेजा; मगर उसने उस पत्रका उत्तर तक न दिया। अमीर आदमी था, गरीब से चिट्ठी पत्री करना भी लाजका कारण समझा, परन्तु जब रोगने भयानक रूप धारण किया और घर घरसे चीख पुकार और हाहाकार उठने लगा तो उसका मन भी डाँवाडोल हो गया। जल के साधारण प्रवाहमें नौका ठहरी रहती है; परन्तु जब तरंगें ऊंची उठने लगती हैं और तूफानका रूप धारण कर लेती हैं तो कच्चे रस्से टूट जाते हैं।

अब उसे गरीब नम्बरदारका ध्यान आया और उसने पुराने पत्रोंका उत्तर दिया जिनमें लाज और संकोचका भाव झलकता था। इसके एक सप्ताह बाद वह अपने परिवारको लेकर आदमपुर जा पहुँचा।

नम्बरदारने दिनको तो नियमपूर्वक इन्कार किया, परन्तु रातको चुपकेसे उनको ले आया। आदमपुरका छोटासा गाँव, चार आदमियोंका आना साधारणसी घटना न थी कि किसीको पता न लगता। दूसरे दिन यह चर्चा घर-घरमें थी। चौकीदार नम्बरदारका शत्रु था। जब उसने देखा कि नम्बरदारके सम्बन्धी गाँवमें आ गये हैं तो उसे बड़ा क्रोध आया और यह क्रोध तब तक शान्त न हुआ जब तक उसने भी अपने किसी बन्धु को आदमपुर न बुला लिया। लोगोंने इससे बुरा तो माना परन्तु कर कुछ न सके। अब क्या था, रास्ता खुल गया। जालन्धरके लोग दलके दल वहाँ आने लगे और बीमारी वहाँ भी फूट पड़ी जिसमें सबसे पहले मृत्यु लाला गणेशदासकी हुई।

५

गणेशदासकी न कोई स्त्री थी न पुत्र, इसलिये उनकी भूमि और सम्पत्ति उनके अनाथ भतीजे गोकुलचन्दको पहुँचती थी। हरभगवानने सोचा—गणेशदास मर गया है, उसका बदला गोकुलचन्दसे लेना चाहिये। इसलिए यार-दोस्त इकट्ठे हुए। उनसे समझौता हो गया। गवाह बनाये गये, पत्तियां ठहराई गईं और थोड़े ही दिनों के बाद एक बालक फग्गनमलकी दरख्वास्त (प्रार्थनापात्र) दे दी गई कि—मैं गणेशदासका पुत्र हूँ, मेरी मा उसकी पत्नी थी, इसलिये गणेशदास की जायदाद पर मेरा हक़ है।

यह बात ऐसी न थी जो छुपी रहती। जंगलकी आगकी तरह सारे गांवमें फैल गई। गोकुलचन्दने सुना तो सिर पीटता पटवारी हरभगवानके यहां पहुंचा, और उसके चरणोंमें गिरकर बोला—ईश्वरके लिए मेरी सहायता करो, टुकड़े टुकड़ेके लिए मुहताज हो जाऊंगा।

पटवारीने बेपरवाहीसे उत्तर दिया—मैं क्या कर सकता हूँ बाबा।

बड़े अफसरोंके द्वारा फग्गनमलकी दरख्वास्त मेरे पास पहुंची है और सुना है कि उसकी गवाहियां बड़ी जबर्दस्त हैं। तुम भी अपना सुबूत (प्रमाण) तय्यार करो और दरख़्वास्त दे दो।

गोकुलचन्दने रोते रोते सिर उठाकर कहा—मगर आप यह तो जानते हैं कि झूठा कौन है और सच्चा कौन ?

हरभगवान खांसकर बोला—बाबा मुझे क्यों तंग करते हो ? जाकर अपने गवाह बनाओ। तहसीलदार साहब आप मौकापर आकर देखभाल करेंगे।

इससे ठीक पन्द्रह दिन बाद तहसीलदार साहब दौरे पर आये। प्रतिपक्षी पहलेहीसे रास्ता देख रहे थे। बिल्ली के भागों छींका टूटा गोकुलचन्दका मुआमला पेश हुआ। प्रतिपक्षियोंकी गवाहियां जबरदस्त थीं। लोगोंने पटवारी के भयसे (?) आंखों देखीं (?) बातें कह दीं। फग्गनमलकी मांने खुद हाज़िर होकर कहा—मुझे गणेशदासने धर में डाल रक्खा था, फग्गनमल उसीका बेटा है।

तहसीलदार साहबने कोई जिरह (प्रश्नोत्तरी) न की। कर भी न सकते थे। रातको पटवारी साहबसे भेंट हुई थी और पटवारी साहबने उसी समय इस भूमि की बात पक्की कर ली थी। सारी जायदाद फग्गनमलको मिल गई।

६

इस रात हरभगवानको शान्ति मिली। वह अपने दोस्तों में अभिमानसे गर्दन उठाकर बोला—गणेशदासका आत्मा आज जरूर रोता होगा।

मित्रमण्डलीने खुशामदसे पीठ ठोंकी। वाहवाह होने लगी। एक ने कहा—सचुमुच वह इसी योग्य था। दूसरे ने कहा—आज इस आनन्दमें उत्सव होना चाहिये।

पटवारी साहबने फग्गनमलसे समझौता कर लिया था कि आधी सम्पत्ति मुझे मिलेगी जिसमें तहसीलदार साहब, नम्बरदार, जैलदार और दूसरे गवाह पत्तीदार होंगे। उस हिस्सेके सामने उत्सवका यह व्यय तुच्छ जान पड़ा, वह हँसकर बोला—'मँजूर!'

इधर उत्सव हो रहा था, उधर फग्गलमलके घरमें दीपक जल रहे थे और गांवके बाहर एक वृक्ष के नीचे गोकुलचन्द बैठा अपनी अवस्था-पर रो रहा था। गांवमें ऐसे आदमियों का कमी न थी जिनके सिर गणेशदासके उपकारसे आजीवन उऋण नहीं हो सकते थे, मगर पटवारीके भयसे सहानुभूति प्रकट करते डरते थे।

गोकुलचन्द सोचता था, क्या था क्या हो गया? वह स्थान जहां बालपन गुजरा, हाथसे छुट गया। वह घर जिसमें माताकी गोंदमें दूध पीया, जाता रहा। वह चित्र जो नेत्रोंके सन्मुख था मिट गया। वह जगत् जो सामने था स्वप्न हो गया। अब क्या होगा?

उसका गला सूख गया था, नेत्र जलसे भरे हुए थे और मुँह उदास था। इतनेमें वर्षा होने लगी। उसने दुःखसे एकटक गांवकी ओर देखा। ठण्डी हवा चलने लगी और शीतके मारे गोकुलचन्दके दांत बजने लगे। उसे निराशासे अपने घरमें सोनेवालोंका ध्यान आया और एक ठण्डी सांस भरकर वृक्षके साथ पीठ लगा दी। साथ ही उसके मुँहसे एक हल्कीसी चीख निकली और वह भूमिपर लेट गया। वृक्षके साथ एक काला नाग लिपटा हुआ था। उसने गोकुलचन्दको काट खाया। यह वह समय था जब हरभगवानके यहां नाच रंग हो रहा था। रातको गोकुलचंद चल बसा।

७

प्रातःकाल यह समाचार हरभगवान ने सुना तो सन्नाटेमें आ गया। उसे यह स्वप्नमें भी ध्यानमें न आया था कि इस बदलेका

इतना विषैला परिणाम होगा। अन्तःकरणने कहा—यह तेरा ही अपराध है। परन्तु फिर हृदयने तसल्ली दी कि वह गांव से बाहर क्यों निकल गया? मेरे घर में तीन गौएँ रहती है, वह तो फिर भी आदमी का बच्चा था। आकर आश्रय मांगता तो क्या मैं उसको जगह न देता?

समय बीत गया, पर हरभगवानका दिमाग़ ठीक न हुआ। कोई इन्तकाल लिखता तो गोकुलचन्दका नाम लिख डालता। बातचीत करते चिल्ला उठा—मैं निर्दोष हूँ। रातको सोते सोते घड़बड़ा उठता—गोकुलचन्दका रोता हुआ चित्र दिखाई पड़ता। कभी बालकको देखता तो कहता—इसकी आंखें गोकुल सी हैं। कभी बैठा बैठा रो पड़ता—गोकुल याद आता है।

स्त्री धीरज देती, मां बाप समझाते; मगर हरभगवान पर ज़रा भी असर न होता। पहले पहले नित्य के कार-व्यवहार में अन्तर होने लगा, पीछे सरकारी काम भी बिगड़ने लगे। होते होते यहां तक नौबत पहुंची, कि एक दिनमें बीसियों गलतियां होने लगीं। अफसर लोग ऐक्सप्लेनेशन मांगते। हरभगवान क्षमा-प्रार्थी होता और भविष्य के लिए सावधान रहने की प्रतिज्ञा करता। परन्तु बसकी बात न थी, अपनी प्रतिज्ञाको निभा न सकता। तहसीलदारने तंग आकर रिपोर्ट कर दी कि पटवारी का दिमाग़ बिगड़ गया है, कामके योग्य नहीं रहा। हुकम हुआ—मौकूफ।

फग्गनमलकी सम्पत्तिने उसके मित्रोंको अधिक कर दिया और हरभगवान् को ग़रीब और बेबस बना दिया। उसकी स्थिति बिगड़ चुकी थी, इसलिये धनसम्पत्तिका बहुत सा भाग तहसीलदारसाहबने निगल लिया हर भगवान् पर 'धोबीका कुत्ता घर का न घाटका' वाली कहावत घटी।

छः मासके बाद एक रात वह बड़बड़ाता हुआ उठा और छत परसे यह कहता हुआ कूद पड़ा—गोकुलचन्द, मैं आता हूं।

नीचे लकड़ीका एक लट्टा रक्खा हुआ था। हर भगवान उस पर गिरा और उसकी गर्दन टूट गई। अनेक उपाय करने पर भी वह बच न सका। और कराह कराह कर मर गया। उसकी मृत्यु पर प्रायः लोग कहते थे कि यह पापके पैसेका फल है।

संसार सुपना

१

उनका नाम गोविन्दलाल था। वे बड़े ही भद्र पुरुष थे। उनकी संगति में मनको शान्ति और चित्त को सुख मिलता था। वे शरीफोंके मित्र थे। परन्तु उनके पास वह पदार्थ न था, जो सुख आनन्दके सिवाय सबको खरीद सकता है, और जिसकी प्राप्तिके लिए आधा संसार रोता हुआ और आधा हंसता हुआ दिन रात संग्राममें मग्न और लीन रहता है।

वे बहुत ग़रीब थे, और लेखनीके सहारे अपनी गरीबीमें जीवनके दिन गुजार रहे थे। वे अखबारमें लेख भेजते थे, प्रकाशकोंके लिए छोटी छोटी पुस्तकें लिखते थे, प्रूफ पढ़ते थे, और इस तरह जो चार पैसे उन्हें प्राप्त हो जाते थे उनमें अपना जीवन गुज़ारते चले जाते थे।

आनन्द उनके सिरपर प्रेमके फल बरसा रहा था, मगर लक्ष्मी उनसे कोसों दूर भागती थी। एक दिन उनके भाग्यके आकाशमें पूर्ण दुर्भाग्यकी काली घटा उठी, और उनकी स्त्रीने बीमारीमें निराश होकर

कहा—मेरा मन कहता है, अब मेरा बचना मुश्किल है।

यह शब्द न थे, दिलमें चुभ जाने वाले तीर थे। गोविन्दलालने स्त्रीका सूखा हुआ हाथ अपने हाथमें ले लिया, और बोले अभी तुम्हारे मरनेके दिन नहीं हैं। अभी तुमने संसारमें देखा ही क्या है?

पत्नीने धीरेसे कहा—जमदूत अन्धा और बहरा है। अगर उसके नेत्र और कान होते तो जगत्में इतनी तबाही और बरबादी न होती।

गोविंदलाल रोकर बोले—प्रेमवती!

इसके आगे उनकी जबान से शब्द न निकला।

प्रेमवतीने ठंडी सांस भरी, और कहा-देखो मौतके ठंडे हाथ मेरे माथेको छू रहे हैं और संसारके पदार्थ मुझे अन्तिम विदा देते हुए प्रतीत होते हैं। आपको शायद विश्वास न आए मगर मेरी तो सारी साध पूरी हो गई। अब मन की कोई साध बाकी नहीं रही। हां अगर हो सके तो कुछ दान करा दो यह जीवन की आखिरी अभिलाषा है।

गोविन्दलाल की जेब खाली थी। फिर भी बोले—प्रकाशकने आज मुझे बीस रुपया देनेका बचन दिया था। कलकत्तेके समाचारपत्रोंमें से भी आज दो ने रुपया भेजने को लिखा हुआ है। बारह बजे तक बहुत कुछ आजाएगा।

"इस समय नहीं?"

"इस समय मैं प्रकाशकके पास जाता हूँ। बीस रुपये ले आऊंगा।"

"मिल जायंगे?"

"ज़रूर मिलेंगे। क्या मैंने परिश्रम नहीं किया? क्या मेरी पुस्तकसे उन्हें काफी रुपया कमानेकी आशा नहीं है? क्या वह अच्छी लिखी हुई नहीं है?

प्रेमवती सब कुछ सोचती समझती थी। हंसकर बोली—दुनिया न हर एक देना देती है, न हर एक अच्छे चीज़को अच्छा समझती है।

"अच्छा बाबा तुम बहुत बातें न करो। डाक्टरने मना किया है।"

"अच्छा।"

यह कह कर उसने ठंडी सांस भरी और आंखें बन्द कर लीं।

२

गोविन्दलाल उसे प्यासी आंखोंसे देखते हुए बाहर निकले और श्यामनारायण पब्लिशरकी दूकानपर पहुंचे। हिचकिचाते हुए अन्दर पांव रख और चुपचाप कुर्सी पर बैठकर श्यामनारायणके मुंहकी ओर ताकने लगे?

श्यामनारायणने कहा—फरमाइये क्या आज्ञा है?

"मैं आज्ञा करने वाला कौन हूँ? एक प्रार्थना है, अगर स्वीकार हो जाय।" थोड़ी देर बाद कहा—"बात यह है कि मेरी स्त्री बीमार है, अब उसके बचनेकी आशा थोड़ी है।"

"जी?"

"आप कृपा करें, तो उसकी लालसा पूरी हो जाय और वह कुछ दान कर ले। यह उसकी अन्तिम इच्छा है।"

"मुझे शोक है कि मैं आपकी इच्छा पूरी नहीं कर सकता।"

"मैं नहीं समझा।"

"बात यह है कि मेरे आदमीने आपकी पुस्तकके विषयमें कुछ अच्छी राय नहीं दी। वह कहता है कि ऐसी पुस्तकका मार्केटमें निकलना बहुत कठिन है।"

गोविन्दलालकी आंखोंकी आगे अंधेरा सा छा गया उन्होंने अपने आपको गिरनेसे बचानेके लिए कुर्सीको जोरसे पकड़ लिया।

उसी समय उनकी पुस्तकका मसौदा उनके हाथ दिया गया। यही मसौदा था, जिसकी नीवपर उनके हवाई महल बने थे। अब गोविन्दलालकी दृष्टिमें सारा ब्रह्माण्ड घूमता हुआ और संसारके सम्पूर्ण मनुष्य दुःखसे हाथ मलते हुए दिखाई पड़ने लगे। उन्होंने देखा कि डाकखाने की विशाल इमारतसे वह व्यक्ति (पत्रवाहक) निकले जो कागजोंके रूप में लोगों पर दुःख, सुख, सहानुभूति और जीवनकी किरणें फैंकनेके लिए मशहूर है। गोविन्दलाल व्याकुल होकर देखने लगे कि उनके भाग्यका

तारा भी उदय होता है या नहीं। वह अपने इलाकेके चिट्ठीरसानके पास जाकर बोले—

"कोई मेरा मनिआर्डर है ?"

"नहीं।"

"अच्छी तरह देखो।"

डाकियेने फार्मोंको उलट पलट कर देखा, और सिर हिलाकर चल दिया। गोविन्दलालके सिरपर दुःखका पहाड़ गिरा और चारों ओर अन्धकार छा गया। मानो इस समय दिन न थी या, काली रात थी।

सोचा, सहृदय मित्रोंसे सहायता मांगूँ। यही तो उनकी परीक्षाका समय है। एक एक करके वे एक एक द्वार पर गये। परन्तु कहींपर काम न बना। ज़बानसे सहानुभूति सभी ने की। बाज़ने आंखोंमें पानी भी भर लिया। मगर इससे ज्यादा किसीने कुछ न किया। गोविन्दलाल जैसे गये थे, वैसेही लौट आए। जाते वक्त थोड़ी बहुत आशा थी, लौटने समय वह भी न थी।

२

"आ गये ?"

"हां।"

"कुछ मिला ?"

"नहीं।"

प्रेमवती चुप हो गई और थोड़ी देर उसी तरह पड़ी रही, जैसी मरी हुई आशा। इसके बाद धीरे धीरे संकेतसे उसने गोविन्दलालको अपने पास बुलाया, और दोनों हाथ गलेमें डालकर बोली—मैंने आपको बहुत दुःख दिया।

गोविन्दलाल रोते हुए बोले--प्रेमवती, मैंने तुम्हें कोई सुख नहीं दिया। परमात्माके दर्बारमें मैं पापी ठहरूंगा।

'छिः छिः ऐसा न कहो। है तुमने मेरे लिए सब कुछ किया है। परन्तु जब किसीके भाग्यमें ही कुछ न हो, तो सोना भी मिट्टी हो जाता है।''

"मगर क्या भाग्य हमारे लिये ही बुरा रह गया है?"

प्रेमवती मुस्करा कर बोली—नहीं, यह हमारे कर्म्मोंका फल है।

अब प्रेमवतीकी अवस्था आगेसे अच्छी थी।

गोविन्दलाल बोले—प्रिये, तुमको अब तो आराम देख पड़ता है।

"नहीं।"

"क्यों?"

"दीपक बुझनेसे पहले जोरसे ऊँचा उठा करता है। चिरागकी लौ बुझनेसे पूर्व हँसा करती है। अब मौत निकट है, इसलिए रोग रोगीको छोड़ गया है, बचनेकी कोई आशा नहीं।''

कैसा हृदय-बेधक दृश्य था! स्त्री मर रही थी और पतिके पास औषधिके लिए चार पैसे भी न थे!

पतिपत्नी उसी तरह बैठे रहे। आखिर पत्नीकी दशा बिगड़ने लगी, और जब आधीरात गुजर चुकी, तो प्रेमवतीकी आंखें पथरा गईं। गोविन्दलाल फूट फूटकर रोने लगे। प्रेमवती निर्निमेष नयनोंसे उनकी ओर निहारने लगी और थोड़ी देरमें ही चुपचपाते इस लोकसे चल बसी। गोविन्दलालने जोरसे चीख मारी और बेसुध होकर गिर पड़े।

जब होश आई, तो घर अड़ोसियां पड़ोसियोंसे भरा था और हर एक जिह्वापर सहानुभूतिके शब्द थे। यह देखकर गोविन्दलालकी आंखों में खून उतर आया।

उन्होंने लाशको देखकर कहा—कल इसपर अग्निके अंगारोंका हक़ होगा, मगर आजकी रात यह मेरी है। इसलिए मैं यह रात व्यर्थ न खोऊँगा। सब इस घरसे चले जाओ, और मुझे इसके पास अकेले छोड़ जाओ।

एक दो आदमियोंने गोविन्दलालको समझाना चाहा; मगर उन्होंने किसीकी न मानी, और सुना अनसुना कर दिया। आखिर मकान खाली हो गया और रातके सन्नाटेमें गोविन्दलाल अपनी स्त्रीकी लाशके पास अकेले रह गए। हां, दीपक जल रहा था, और उसका प्रकाश प्रेमवतीके चेहरे पर पड़ रहा था।

गोविन्दलाल प्रेमवतीसे लिपट गए, और पागलोंकी तरह उससे बातें करने लगे। कभी रोकर, कभी हँसकर, कभी हाथ जोड़कर, कभी क्रोधसे उसे बुलाते, और दो दो बातें करनेकी प्रार्थना करते। परन्तु बातें करने वाली कहां थी? पंछी उड़ गया था, पिंजरा खाली रह गया था। गोविन्दलाल पिंजरेसे बातें करते थे और रोते थे। इसी तरह रोने-धोनेमें सारी रात गुजर गई, और दिन चढ़ा। गोविन्दलालने सोचा, कल इस समय जीती थी, जागती थी, बातें करती थी। आज सब कुछ समाप्त हो गया। इतनेमें किसीने दरवाजा खटखटाया।

४

गोविन्दलालने बाहर आकर देखा तो चिट्ठीरसां खड़ा है, और कह रहा है—बाबूजी! आपका सौ रुपयाका मनीआर्डर है। गोविन्द-लालको मनीआर्डरके आनेकी सूचना सुनकर शोक हुआ। इन्हीं रुपयों में से पन्द्रह बीस रुपये भी कल आ जाते तो दिलकी हसरत पूरी हो जाती और कदाचित् स्त्री बच जाती। मगर अब तो यह और मिट्टीके ढेले दोनों बराबर थे।

गोविन्दलालने हस्ताक्षर करके रुपये लिये और मृतक पत्नीके चरणों में रख दिये। चिट्ठीरसां यह देखकर सन्नाटेमें आ गया और तीन पत्र जो गोविन्दलालके नामके थे, उनके हाथमें देकर चला गया।

गोविन्दलालने पत्र खोले। पहला पब्लिशरकी ओर से था जिसने रुपया भेजा था—

"आपकी काव्य-पुस्तक मुझे पसन्द है। मैं इस पुस्तकके लिये २००) दो सौ रुपया दे सकता हूं। आशा है, आप स्वीकार करेंगे। १००) रु० आज भेजता हूँ, बाक़ी १००) दो चार दिनोंमें भेज दूंगा।"

गोविन्दलालने घृणासे पत्रको फैंक दिया और कहा—कल सौ नहीं पच्चीस ही भेज देते, तो मुझे बिना मोल खरीद लेते। परन्तु आज इनकी आवश्यकता नहीं थी। समयपर पानीका छींटा भी पड़ जाय, तो किसान का मन खिल जाता है, मगर असमयमें मूसलाधार वर्षा भी बुरी लगती है।

दूसरा पत्र खोला। गोविन्दलालका रंग बदल गया। उन्होने विश्वास करनेके लिए बारम्बार पढ़ा; परन्तु पत्र वही था—

"तुम्हारे सम्बन्धी लाला रामकिसनका कल रात देहान्त हो गया है। वे मरते समय अपनी सारी जायदाद तुम्हारे नाम कर गये हैं। जल्दी यहां पहूंचो, और प्रबन्ध कर लो।"

ख़त रामकिशनके कारिन्देकी ओरसे था। इसी रामकिशनको कितनी बार रो रोकर गोविन्दलालने सहायताके लिए लिखा था तो रामकिशनने इसी कारिन्देके हाथसे उत्तर भिजवाया था कि मेरे पास तुम्हारे लिए कुछ नहीं है। आज वही कारिन्दा उसी गोविन्दलालको लिख रहा था कि, रामकिशन अपनी सारी जायदाद तुम्हारे नाम कर गया है।

रामकिशन अमीर आदमी था। लगभग तीन चार लाखके तो उसका बैंकमें ही जमा था। कार व्यवहार बहुत अच्छी तरह चलता था। रामकिशन रुपयोंमें खेलता था।

गोविन्दलालकी दशा बदली तो उन्होंने सोचा कि अब मैं वह गोविन्दलाल नहीं हूँ, जो एक घण्टा पहले था। अब मैं लखपती हूँ और रुपया मेरे इशारे पर नाच रहा है। स्त्री मर गई थी। मनमें विचार था, संसार छोड़कर सन्यासी हो जायँगे। अब इच्छा हुई, कि चार दिन ऐश्वर्यकी बहार भी देख लें। निर्धनतामें संसार नहीं छोड़ा, अब

लक्ष्मीने दयादृष्टि की है, तो क्यों छोड़ दें ? अंधेरी रातमें आंखें फाड़ फाड़ कर प्रकाशको ढूंढ़ा करते थे। अब चांदनी पक्षमें आंखें बन्द क्यों करूँ।

मायाके आने जानेकी खबरें बहुत जल्द फैल जाती हैं। दैनिक समाचारपत्रोंमें सेठ रामकिशनकी मृत्युका वर्णन था और यह भी लिखा था कि वे सारी सम्पत्ति मरते समय अपने दूरके सम्बन्धी गोविन्दलाल के नाम लिख गये हैं। यह समाचार पढ़कर बहुतसे लोग गोविन्दलाल के पास आने लगे ? जैसे रोशनीके साथ पतंगे भी आ जाते हैं।

गोविन्दलाल भी अब पहले गोविन्दलाल न थे। जो प्रेमवतीकी मृत्युका शोक था, परन्तु फिर भी धनके मिलनेकी प्रसन्नता ओंठोंपर झलक रही थी। पहले इशारे हुए, फिर कानफूसियां हुईं। फिर एक दो आदमी हिम्मत करके गोविन्दलालके पास आए। फिर धीरे धीरे कुछ बातचीत हुई। फिर शर्तें पक्की हुईं और प्रेमवतीकी लाश जलनेसे पहले ही गोविन्दलालकी मंगनी हो गई।

५

गरीबको रुपएकी इच्छा होती है, अमीर उसे बढ़ाना चाहता है। अब गोविन्दलाल दिनरात इसी विचार इसी विचारमें मग्न रहने लगे। दिल्लीके प्रसिद्ध रईसोंमें उनकी गिनती थी, मगर फिर भी मनको सन्तोष न था। दिनरात तृष्णाकी भट्टीमें जलते थे और लोभके गड्ढेमें उतरते जाते थे।

लाजवन्ती उनकी स्त्री थी, बहुत सच्चरित्रा और बड़ी रूपवन्ती। गोविन्दलालसे उसे प्रेम था। वह प्रायः कहा करती कि मैं तुम्हारे साथ ही हूँ जबतक तुम हो, तबतक मैं हूँ। यदि तुमको कुछ हुआ, तो मैं भी संसारमें न रहूँगी।

गोविन्दलाल हंसा करते थे। उसकी बात सुनकर नहीं, अपनी तरफ़ देखकर।

विवाहके एक वर्षके अन्दर ही लाजवन्तीके पिता मर गए और एक चार वर्षका छोटा अनाथ बच्चा बिलखनेके लिए छोड़ गये। लाजवन्ती की माता पहले मर चुकी थी। अब बच्चा बहिन और बहनोईके सुपुर्द था।

इस बालकके नाम साठ सत्तर हजार रुपया था। गोविन्दलाल उसके संरक्षक थे। ख्याल आता अगर यह मर जाय तो सारा रुपया मेरा हो जाय।

छल किये गये, चालें खेली गईं; लोभ दिये गये। बेचारा बच्चा पहलेसे बीमार था, उसे धाय द्वारा विष पिलाया गया। लाजवन्तीने यह देखा और निष्ठुर पतिको बुरे मार्गसे हटाना चाहा, परन्तु गोविन्द लाल किसीकी सुनते थे जो उसकी सुनते।

अनाथ बालक मर गया। उसकी बहन दुःखसे कुढ़ कुढ़ कर क्षयरोगका शिकार हो गई; मगर गोविन्दलालकी आंखें अब भी न खुलीं।

मुन्शी बालमुकुन्द उनके मित्रोंमें से थे, शुद्ध हृदय और स्पष्टवक्ता। एक बार उन्होंने गोविन्दलालको समझाना चाहा। इससे गोविन्दलाल आग बबूला हो गए। यह मामूली आदमी मेरे सन्मुख गर्दन उठाता है, और मुझे उपदेश देता है? इतना साहस इसका! माना, मैं सुमार्गसे थोड़ा इधर उधर हो जाता हूं। परन्तु क्या लक्ष्मी देवीमें इतनी भी ताकत नहीं कि जरासी भूलपर पर्दा डाल सके? संसार इसलिए भला नहीं है कि वह भला बनना पसन्द करता है; बल्कि इसलिए है कि वह भला बनने पर मजबूर है। धन पाकर भी दो दिन आनन्द न लूटा, तो जीवन पर धिक्कार है।

मुन्शी बालमुकुन्दने प्रार्थना की, और सोच विचार कर चलनेके लिए कहा। गोविन्दलालने मुँह फेर लिया और नौकरको गाड़ी तय्यार रनेकी आज्ञा दी। बग्घी तय्यार हुई, तो उसमें जा बैठे, और नौकर

को हण्टर लगानेका इशारा किया। बालमुकुन्द यह देखकर पानी पानी हो गए। मगर बुद्धिमान आदमी थे, चुप हो रहें।

उस दिनसे मन ही मन गोविन्दलाल बालमुकुन्दके शत्रु हो गये। कमेटीका चुनाव निकट आया। गोविन्दलाल और बालमुकुन्दकी प्रत्यक्ष रूपमें छिड़ गई। गोविन्दलाल अमीर आदमी थे। उन्होंने थैलीका मुँह खोल दिया। भोज होने लगे, दिनरात अतिथियोंका तांता लगा रहता। छोटेसे छोटे आदमीके साथ भी गोविन्दलाल हँस हँसकर बातें करने लगे। परन्तु इस शिष्टाचार और सत्कारके नीचे स्वार्थका रंग झलकता था।

पर्चियां नोटोंके तौल बिकने लगीं और कई अभागोंके तंग दिन जरा आरामसे कटने लगे। गोविन्दलाल मेम्बरीकी दौड़में सर तोड़ यत्न कर रहे थे। उन्होंने रुपयेको पानीकी तरह बहाना शुरू कर दिया। मगर बालमुकुन्दका ओरसे ऐसी कोई बात न होती थी।

वे अपने पक्षमें लैक्चर देते थे, और सर्वसाधारणके सन्मुख वास्तविक स्थिति रखते थे। आखिर चुनावका दिन निकट आ गया।

गोविन्दलाल बालमुकुन्द दोनों बड़े अधीर थे। परिश्रमी विद्यार्थी परीक्षाके परिणामके लिए जिस तरह व्याकुल रहता है, वही हाल इन मेम्बरीके अभिलाषियोंका था। परिणाम निकला, तो गोविन्दलालका रंग उड़ गया। वह हार गए, बालमुकुन्द जीत गया। रुपया काम न आया, शराफत काम आ गई। मगर गोविन्दलालने बदला लेनेकी कसम खा ली

चार पांच दिनके बाद मुन्शी बालमुकुन्दके घरको आग लग गई और उनकी कुँवारी लड़की ग़ायबहो गई।

६

संसार सोता था, परन्तु आकाशवालोंकी सभा जगमगा रही थी। गोविन्दलाल बैठकमें बैठे हुए अपने अतीत जीवनका स्मरण कर रहे थे

और सोच रहे थे, कि क्या थे और क्या हो गये ? इतनेमें भगवतीकी स्मृतिने प्रेमदेवीकी तस्वीर सामने खड़ी कर दी। गोविन्द-लाल बोले—प्रेमवती !

प्रेमवतीका चेहरा मुस्कराया—तुम मुझे बुलानेके अधिकारी नहीं हो।

"क्यों ?"

"क्योंकि तुमने प्रेमकी पवित्र प्रतिज्ञाओंको तोड़ दिया है और मेरे मरनेपर दूसरा व्याह कर लिया है। मैं तुम्हारी थी, मगर तुम मेरे न बने। मैं मरी न थी, जीती थी। तुम्हारी परीक्षा लेनेको यह सब स्वाँग रचा था।"

गोविन्दलाल रोकर बोले—प्रेमवती ! क्या तुम अब न आओगी ?

"कभी नहीं।"

गोविन्दलालने प्यारकी बाहें फैला दीं मगर प्रेमवती ग़ायब हो गई। इसके साथ ही लाजवन्ती रोती हुई दिखाई दी, और गोविन्दलालसे बोली—मेरा छोटा भाई नहीं मिलता, उसे ढूँढ़ती हूँ।

"कहाँ गया है ?"

"पता नहीं।"

इतनेमें ही छोटा बच्चा एक ओरसे आकर कहने लगा—बहन, मैं मर गया हूँ।

लाजवन्तीने भाईको चूमकर कहा—कैसे मरे भैया।

बच्चेने गोविन्दलालकी ओर इशारा किया—यह सब इन्हींकी कृपा है।

चारों ओर शोर मच गया, और हिंसक हिंसक, घातक घातकके शब्दोंसे आकाशमें घूमनेवाले तारे भी सहम गये। गोविन्द-लाल घबरा कर बोले:—

"यह झूठ है। यह झूठ है।"

लाजवन्तीने अग्निमय आँखोंसे गोविन्दलालकी ओर देख कर कहा—मेरी मौतके भी तो तुमही कारण हो।

गोविन्दलाल और न सुन सके। उन्होंने ज़ोरसे आँखें मीच लीं, और कहा—यह सब झूठ है। आँखें खुलीं तो मुन्शी बालमुकुन्दकी कन्या बाल खोले हुए दिखाई दी। उसके मुँह पर मुर्दनी छाई हुई थी और वह क्रोधसे गोविन्दलालकी ओर देख कर होंठ काट रही थी। इतनेमें मुन्शी बालमुकुन्द सिपाहियोंको साथ लेकर कमरेके अन्दर आये और बोले—वह नीच दुराचारी आदमी यही है।

गोविन्दलाल भागनेकी कोशिश करने लगे, मगर सिपाहियोंने अवसर न दिया। अमीर हाथोंमें हथकड़ियाँ डाल दी गईं और कोमल पाँओंको बेड़ियोंने जकड़ लिया।

एक सिपाहीने उसे धक्का देकर कहा—चलो।

गोविन्दलाल गिड़गिड़ाकर बोले—अरे भाई, क्या तुम मुझे क्षमा नहीं कर सकते?

"बिल्कुल नहीं, प्रकृति क्षमाका नाम नहीं जानती। शैतानके हथियार! अब अपना किया हुआ ले।"

दूसरा सिपाही ज़रा दयालुसा था, वह बोला—शैतानका हथियार यह तो नहीं, दौलत है। यह सँभल नहीं सका, गिर गया, यही इसका दोष है।

गोविन्दलाल सिपाहीके पाँओंपर गिर पड़े और बोले—मुझे बचा लो।

सिपाहीने ज़ोरसे ठोकर लगा कर उनका सिर परे फैंक दिया। अब उन्हें मालूम हुआ, कि जब कंगाल मनुष्य मुझसे कोई प्रार्थना करते थे, और मैं उन्हें बदज़बानीके साथ रद्द कर देता था, तो उन्हें कितना दुःख होता होगा।

सिपाहीने सड़सड़ाता हुआ हण्टर जमाया और उनकी चीख निकल गई। देखा × × ×

यह सब सुपना था। प्रेमवतीकी लाश सामने पड़ी थी और

७

उसके चरणोंमें सौ रुपयेका नोट रक्खा हुआ था। उसके पास ही सेठ रामकिशनकी मौत और वसीयतकी चिट्ठी पड़ी थी।

गोविन्दलालका सारा शरीर थरथरा रहा था। वे जल्दीसे उठे और उन्होंने नोटको दियासलाई दिखा दी।

एक आदमीने यह देखा, तो हैरान हुआ, और बोला—यह क्या?

गोविन्दलालने जवाब दिया—संसार सुपना। और फिर वसीयतके टुकड़े टुकड़े करके और संन्यासी बननेका संकल्प करके घरसे बाहर निकल गए।

पतितोद्धार

१

सेठ सुलखनदास सियालकोटके मशहूर रईस थे, बड़े सम्पत्तिशाली बड़े विश्वासपात्र। सियालकोटके आसपास उनके नामकी धाक बंधी हुई थी। साख इतनी थी कि रद्दी कागज उठा कर लिख भेजते तो हज़ारोंका माल मँगा लेते। उनके पिता-पितामहने लाखों कमाए थे। इस बातमें सेठ साहब आप भी बड़े समझदार थे। उस रुपयेको बढ़ानेकी कोशिश करते। कभी घटानेका साहस नहीं किया। उनकी हार्दिक इच्छा यह थी कि जो कुछ पैतृक सम्पत्ति पाई है, मरते समय उससे अधिक अपने पुत्रको सौंप जायँ, नहीं तो परमात्माके सम्मुख आँखें झुक जायँगी।

छावनीमें उनकी दुकान थी। सेठ साहब दुकानदारीके नियमोंसे पूरे परिचित थे। नौकर कई थे, मगर गद्दीपर आप ही बैठते थे। ग्राहक आता तो उससे ऐसा अच्छा व्यवहार करते और हँस हँसकर ऐसे जाल फेंकते, कि भोली भाली चिड़िया दानें पर उतर आती और एककी जगह चारका

सौदा बिकता। सेठसाहब उन दुकानदारोंमेंसे न थे, जो ग्राहकके एक चीज़ पसन्द न करनेपर गालियाँ देने लग जाते हैं। आप कहा करते थे, कि ग्राहक एक चीज़ माँगे तो उसके सामने तीस चीज़ें रख दो। एक नमूना पसन्द न करे चार और रख दो, फिर देखो, ग्राहक कोरा कैसे निकल जाता है। ग्राहक अगर घरसे सौगन्ध खाकर ही आया हो कि दुकानदारको तंग करना है—तो भी सेठसाहबके माथेपर बल न आता था, और वे उठकर उसे थोड़ी दूर बिदा करने जाते।

वे केवल दुकानदार ही न थे, प्रसन्नचित्त और मिलनसार भी थे। अच्छी अच्छी सभाओंमें बुलाए जाते थे, और उनकी बातें इतनी मनोहारी और मनोरंजक होती थीं कि वे सारी सभाको उसमें उलझा लिया करते थे,। लोग उठनेका नाम न लेते थे। जब कोई आदमी कृतज्ञताके भावसे कह देता कि सेठसाहब! आपने यहाँ पधारकर बड़ी कृपा की है, तो आप धीरभावसे—जिसके साथ ठठोलपनका लेश होता था—जवाब देते, यह तो मेरा इश्तिहार है। लोग सुनते तो हंसीसे लोट-पोट हो जाते।

मगर इन बातोंके होते हुए भी आप पुराने विचारोंके आदमी थे। प्रातःकाल उठकर सूर्य्यको जल देना इनका नित्य कर्म्म था। हर मंगलवारको महावीरका पकवान पकवाते, और हर रविवारको व्रत रखते थे। यह नित्यकी बातें थीं, जो कभी न टूटती थीं। पुरोहितका कथन पत्थर-परकी लकीर था, और विरादरीकी रीति-प्रणाली वेदका प्रमाण।

२

आपका पुत्र दीनानाथ बहुत समझदार और दाना था। एन्ट्रैन्स फर्स्ट डिवीज़न (श्रेणी कक्षा) में पास कर चुका था और अब कालेजमें दाख़िल हो चुका था। सेठ साहबके सामने उसने कभी आँखें न उठाई थीं, और न उसके यार-दोस्तोंमेंसे किसीने उसे कोई शरारत करते देखा था। जब

लड़के मिलकर नई नई शरारतें, सोचते, जब वे किसी सीधे-साधे आदमी-को मिलमिलाकर बनानेका फ़ैसला करते, तो दीनानाथ नम्रतासे उनका विरोध करता और जब वे उसकी न सुनते तो चुपचाप वहाँसे टल जाता ।

वह अपने पिताका एक ही पुत्र था । उसकी माँ उसे एक सालकी उम्रमें ही पिताकी प्रेममयी गोदमें छोड़कर इस लोकसे बिदा हो गई थी । सेठ साहब उसे बेहद प्यार करते थे । अपने लिये पैसा खरचते हुए झिझकते थे, मगर दीनानाथके सिरपर थैलियाँ निछावर करनेमें भी संकोच न करते थे ।

मगर एक बातमें दीनानाथ अपने बापकी ज़िद था । सेठ साहब सनातन धर्म्मी थे, दीनानाथ आर्य कुमार सभाका मंत्री था ।

समाजका सालाना जलसा आया, तो दीनानाथ खाना पीना भूल गया । जब भरे पण्डालमें उसने पतितोंकी शुद्धि पर छोटी सी वक्तृता दी, तो लोग दंग रह गए । उसने कहा—

"तुम कहते हो कि वे नीच हैं, क्योंकि वे नीच माँ-बापके यहाँ पैदा हुए हैं । मैं कहता हूँ कि फूल मिट्टी गोबर ईंट पत्थरोंसे ही निकलता है और दुनियाँकी आखोंको अपनी ओर खींच लेता है । गन्ना पृथ्वीसे ही जन्म लेता है और शर्बतके घड़े उँड़ेल देता है । क्या तुमने कभी फूलको इस कारण परे फैंका है कि वह मिट्टीसे निकला है ? क्या तुमने कभी ईखको इस कारण घृणाकी दृष्टिसे देखा है कि वह भूमिसे निकला है ? वह नीच है, क्योंकि वह एक नीचके यहाँ उत्पन्न हुआ है । और मैं ऊँचा हूँ, क्योंकि मैं एक उच्च वंशमें उत्पन्न हुआ हूँ । मैं पूछता हूँ, मेरे पास ऊँचा होनेका कौनसा प्रमाण है ? क्या अछूतोंके आँखें नहीं ? क्या उनके कान नहीं ? क्या वे मेरे समान नहीं सोचते ? क्या मेरे समान अनुभव नहीं करते ? तुम कहते हो, वे तुम्हारे वेद पढ़नेके अधिकारी नहीं हैं । मैं कहता हूँ, यह तुम्हारा अन्याय है । वेद परमात्माके

हैं, उसी तरह जिस तरह सूर्य्य, चाँद, वायु और जल परमात्माके हैं। क्या सूर्य्य उनको प्रकाश नहीं देता ? क्या वायु उनके घरोंमें प्रवेश नहीं करता ? क्या आग उनके चूल्होंको गर्म नहीं करती ? क्या पृथ्वी उनको अपने ऊपर चलनेसे मना करती है ? अगर नहीं, तो उनसे घृणा क्यों ?

"मैं अछूतोंके आगे अपना 'आप' पेश करता हूँ और अपना जीवन उनके लिए अर्पण करनेका प्रण करता हूँ। मैं पढ़ूँगा। मैं डिगरी लूँगा। मैं गाँव गाँव फिरूँगा। मैं कष्ट उठाऊँगा। मैं विपत्तियाँ सहूँगा। मैं उपवास करूँगा। मैं भूखों मरूँगा। मगर उनके लिए जिनके लिए तूने—ऐ हिन्दू जाति ! तूने—अपनी दयाका द्वार बंद कर रक्खा है। उस द्वारको मैं मेहनत और परिश्रमसे खोल दूँगा। मैं एक ब्राह्मणको जो कर्मोंका नीच है, परे फेंकूँगा। मगर एक व्यभिचारिणी वेश्याके पुत्रको जो सदाचारी और सत्पुरुष हो, गले लगानेमें गौरव समझूँगा।"

लोगोंने सुना तो तालियाँ पीट दीं। दीनानाथ प्लेटफ़ार्मसे उतरा, सभापतिने उसे गले लगा लिया और कहा—हमें तुमपर मान है।

दीनानाथने यह सुना, तो सिर झुकाकर जवाब दिया—यह आपकी मेहरबानी है, मैं तो एक मामूली विद्यार्थी हूँ।

३

सेठ सुलखनदासने इस व्याख्यानका हाल सुना तो जल भुनकर कोयला हो गये। गर्जते हुए आये और बेटे पर बरस पड़े। दीनानाथ चुपचाप सुनता रहा और सिर झुकाकर बैठा रहा।

अन्तमें नम्रतापूर्वक बोला—मैं आर्य्यसमाजी हूँ, और आर्य्यसमाज पतितोंका उद्धार करनेमें मजबूर है। मैं कायर नहीं बन सकता

"तूने आज कुछ प्रण भी किया है ?"

"जी हाँ किया है।"

"क्या ?"

"पतितोंके उद्धारका प्रण।"

सुलखनदासके धैर्य्यकी दीवारें गिर गईं और क्षमाके बन्द टूट गये। क्रोधसे लाल पीले होकर बोले—मुझे तुमसे यह आशा न थी कि तुम इस तरह गुस्ताखीके जवाब दोगे।"

दीनानाथने ज़मीनकी ओर देखते हुए जवाब दिया—मैं आपका वही आज्ञाकारी बेटा हूँ।

"तो मेरा कहना मानो और आइंदासे आर्यसमाजमें कभी न जाओ।"

"यह मुशकिल है।"

"क्यों?"

"क्योंकि यह सिद्धान्तका सवाल है।"

सेठ सुलखनदास आगबगूला हो गये —दांत पीसते हुए बोले—सिद्धान्त इतना ही प्यारा है। बापको छोड़ दोगे?

दीनानाथ अगरचे लज्जालु प्रकृति था और कभी माँ-बापके सामने ऊँची बात न बोला था। मगर जवानीका जोश था, अनुचित दबावको सहन न कर सका। आगा पीछा सोचे बिना ऐंठ कर बोला—सिद्धान्तके सामने सब कुछ तुच्छ है।

सुलखनदासको बड़ा आघात पहुँचा। मनमें आया, ऐसे कपूतको कान पकड़ कर बाहर निकाल दें। मगर फिर कुछ सोच समझकर वहाँसे टल गए।

दीनानाथ सोचने लगा, यह सिद्धान्तका सवाल बहुत महँगा पड़ता दिखाई देता है। पिता पुराने विचारके आदमी हैं, यह आज़ाद खयाली न सह सकेंगे। मैं जो कुछ भरे पूरे जलसेमें कह चुका हूँ उससे फिरना असम्भव और जो पग आगे बढ़ चुका है, उसे पीछे हटाना कायरता!

उसी समय एक बच्चा वहाँ आया और एक पत्र उसके हाथमें देकर आदरपूर्वक खड़ा हो गया।

दीनानाथने पत्रको देखा । हस्ताक्षर अपरिचित थे । बालकको देखा—वह भी नावाकिफ़ था । पत्र खोला तो और भी आश्चर्य हुआ । लिखा था—

"आर्य्यवीर ! तुम्हारी महत्त्वपूर्ण वक्तृताकी चर्चा आज बच्चे बच्चेकी ज़बानपर है; और तुम्हारे प्रणका बखान नगरके कोने कोनेमें हो रहा है । तुम्हारे विचार कैसे पवित्र हैं । मै तुम्हें उस समयसे देख रही हूँ जब तुम बहुत छोटे थे । तुम्हारी वक्तृताकी बात सुनकर मैं उछल पड़ी । मेरे सोये हुए भाव जाग उठे । मै साफ साफ कह देना चाहती हूँ, कि मैं उस श्रेणीमेंसे हूँ, जिसे सोसायटीके प्रतिष्ठित लोग घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं । मगर एकान्तमें घरपर बुलानेमें × × × । मै एक वेश्याकी बेटी हूँ । परन्तु अभीतक मेरे पास धर्मकी दौलत अपनी असली हालत में है, जिसका एक पवित्र और भली स्त्रीके पास होना आवश्यक है । मगर लोभी आँखें मेरे चेहरेपर हैं, और नीच हृदय, नये आकाश और नयी भूमिकी खोजमें मेरे निकट आ रहे है । मेरी माँ मुझसे बड़ी-बड़ी आशाएँ रखती है और मुझे पापके गढ़ेमें धकेलनेकी तय्यारियाँ कर रही है ।

"मैं तुम्हारी भलमनसी और शराफतसे प्रार्थना करती हूँ । मैं तुम्हारी आज़ादख़यालीसे विनती करती हूँ । परमात्माके लिए मुझे बचाओ और उस अग्निसे जो मेरे चारों ओर सुलग रही है, निकालो ।—क्या तुममें यह हिम्मत है ? क्या तुम एक डूबती हुई लड़कीको पापके समुद्रसे बचाओगे ?

"शामको चार बजे कम्पनी बाग़के पूर्व्वीय फाटकपर मिलकर सारी कहानी कहूँगी । क्या तुम आओगे ?

एक वेश्याकी बेटी ।

दीनानाथ सन्नाटेमें आगया और मन ही मन सोचने लगा—"यह तो बुरी हुई ? यह बात मुझे बदनाम कर देगी । लोग मुझपर उँगलियाँ उठावेंगे । परन्तु क्या यह पाप है ? क्या एक डूबती हुई

लड़कीको बचाना और एक पतित आत्माको उठाना गुनाह है ? क्या एक प्राणीको दुःख-समुद्रसे उबारकर, आनन्द और कल्याणकी भूमिमें पहुँचाना एक ऐसा कर्म्म है, जिसके लिए संकोच किया जाय ? यह पाप है, क्योंकि सोसायटी इसे पाप समझती है । तो क्या पतितोद्धार पाप नहीं है ? क्या शुद्धि पाप नहीं है, जिसका हिन्दूजाति बड़े बलसे विरोध करती रही है ? नहीं नहीं, मुझे जाना चाहिए, मुझे उसकी बात सुननी चाहिए, और वह जो कुछ कहती है उसे सत्य और कर्त्तव्यकी तुलापर तौलना चाहिए । इसके लिए लोग जो मनमें आए कहें, मैं उसकी परवाह न करूँगा । संसार मुझे कर्त्तव्यभ्रष्ट नहीं कर सकता, जबतक कि मैं स्वयं अपनी दृष्टिमें आप भ्रष्ट न हो जाऊँ ।

यह सोचकर दीनानाथने उस अपरिचित लड़कीसे मिलनेका निश्चय करके लड़केसे कहा—जाओ कह दो, वे बाग़में आयँगे ।

४

कालेजसे तीन बजे छुट्टी हुई तो दीनानाथ साईकल पर चढ़कर सीधा कंपनीबाग़ पहुँचा । पूर्वीय फाटकपर एक कमसिन सुन्दरी उसकी राह देख रही थी । उसे देखते ही उसने हाथ जोड़कर सिर झुकाया और चुपचाप खड़ी हो गई ।

दीनानाथने लड़कीको सिरसे पैरतक देखा । उसके मुखमण्डलपरसे भोलापन बरसता था, और कोई बात ऐसी न थी जो उस वंशमें विशेषतः होती हैं । उसकी आँखोंमें आँसू थे और हाथ पाँव काँप रहे थे ।

दीनानाथने पूछा—मुझे वह पत्र आप ही ने लिखा था ?

लड़कीने सिर झुकाकर जवाब दिया—हाँ ।

" मैं आ गया हूँ । "

लड़कीने पूछा—आपने वह पत्र पढ़ लिया है क्या ?

दीनानाथने सावधानीसे चारों ओर देखा और कहा—हाँ, क्या तुम अकेली हो ?

"नहीं, मेरी माँ भी आई है। वह बाग़में है।"

दीनानाथ काँप उठा, और बोला—अगर वह इधर आ जाए तो—

लड़कीने कहा—आप चिन्ता न करें, वे इधर न आयँगी।

"अच्छा कहो, क्या कहना है ?"

लड़कीका गला भर आया। उसने भूमिपर घुटने टेककर उत्तर दिया—

"परमात्माके लिए मुझे बचा लो, मैं इस नश्वर जीवनमें पापाग्निकी विनाशकारी ज्वालासे बचना चाहती हूँ। मेरी माँ मुझे नष्ट करनेपर तुली हुई है। उसे झूठे भोग-विलासके सिवाय और कोई चीज़ नहीं सूझती। परन्तु मुझे वह दिखाई देता है जो मेरी माँ नहीं देख सकती। मैं इस पेशेको छोड़ना चाहती हूँ और गार्हस्थ्य जीवन बिताना चाहती हूँ। मैं अपने आपको तुम्हारे चरणोंपर डालती हूँ। मुझे ठोकर न लगाओ। मुझे घृणाकी दृष्टिसे न देखो। मैं सन्मार्ग पर चलना चाहती हूँ। क्या यह पाप है ?"

"नहीं।"

लड़कीका चेहरा चमक उठा, और उसने लालसाभरे स्वरमें प्रार्थना की—

"तुम मुझे बचाओगे ?"

दीनानाथ कुछ देर चुपचाप खड़ा रहा, फिर बोला—तुम जानती हो, यह काम बड़े खटकेका और कठिन है। इसके लिए समझने-सोचने की ज़रुरत है। तुम धीरज रक्खो, मेरा जवाब तुम्हारे लिए सन्तोषजनक होगा। मगर मैं इस समय प्रतिज्ञा नहीं करता कि मैं तुम्हारे लिए प्राणोंको जोखोंमें डाल दूँगा। अपने बलको जाँचनेसे पहले पानीमें कूद पड़ना मूर्खता है। थोड़े दिन देखो, फिर मैं तुम्हें जवाब दूँगा।

लड़कीने कहा—मैं नौकर भेज दूँगी।

"कुछ समझदार है ?"

"हाँ, उसपर मैं पूरा भरोसा रखती हूँ। तुम भी उसे अपना समझना।"

"अच्छा, अब मैं जाता हूँ।"

"जाओ, मगर मेरा ध्यान रखना। मुझे नरकमें सड़नेपर मजबूर न करना।

दीनानाथने कहा—तुम धीरज रक्खो।

दीनानाथ वापस मुड़ा तो लड़की उसे देखती रही और जब वह दृष्टिसे ओझल हो गया, तो ठण्डी साँस भर कर उस ओर रवाना हुई, जहाँ उसकी माँ अपने प्रेमियोंके साथ बैठी रंग-रलियोंमें समय बिता रही थी।

५

ऊपरकी घटनाके दस दिन बाद दीनानाथ अपने कमरेमें बैठा कुछ सोच रहा था कि उसका मित्र सत्यपाल हँसता हुआ आकर कुर्सीपर बैठ गया।

दीनानाथ बोला—कहो क्या ख़बर लाये ?

"सब ठीक है। मेरी पूछताछ पूर्ण हो गई।"

"क्या पता लगा ?"

"जो पता लगा है वह सन्तोषजनक है। सबकी यही राय है कि लड़की बहुत ही सरल है, और उसमें कोई दोष नहीं। दोष है तो केवल यह कि उसने एक वेश्याके पेटसे जन्म लिया है। मगर तुमको यह सुन कर आश्चर्य्य होगा कि उसकी माँ भी ख़ानदानी वेश्या नहीं है, बल्कि हिन्दू घरानेकी स्त्री है। उसका असली नाम शिवदेवी है। लोभी माता-पिताने रुपयेके लिए उसे एक बूढ़ेके साथ ब्याह दिया था। इसका परि-

ख़ाम वही हुआ जो ऐसे ब्याहोंका होता है। शिवदेवी एक वर्षके अन्दर विधवा हो गई। लोगोंने इसे माँ-बापका दोष बताया। मगर माँ-बापने सब बात प्रारब्धके माथे मढ़ी और उसे अपने घर ले गये। शिवदेवी रूपवती और जवान थी। दुराचारियोंसे भरपूर संसारमें धर्म्मके मार्गसे फिसल गई। उसका फल यह लड़की है। लड़कीके उत्पन्न होते ही शिवदेवी पर जहाँ तहाँ धिक्कार पड़ने लगी, और उसने इससे बचनेके लिए पहले इस्लामका आश्रय लिया और उसके बाद यह कर्म्म करना आरम्भ कर दिया। मूर्ख रोगीने भयानक औषधिका सेवन किया!

दीनानाथने धीरतासे कहा—मैं भी सोच रहा था कि इस लड़की के पैतृक संस्कार बहुत बुरे न हों, परन्तु अब मालूम हुआ, कि इस विषय में बहुत घबराने की ज़रूरत नहीं है।"

"मेरी रायमें तुमको अवश्य यह कड़वा प्याला होठोंसे लगाना चाहिए। परमात्माने तुम्हारी परीक्षाके लिए यह गोरखधन्धा तुम्हारे सामने रक्खा है। इसे खोलो और संसारकी अंगुलियोंकी पर्वाह न करते हुए एक डूबते हुए जीवनको शान्ति और सुखके किनारे लगाओ। उस दिन तुमने अपने लेक्चर में कहा था कि मैं ब्राह्मणको-जो नाम मात्रका ब्राह्मण होगा परन्तुप कर्म्मोंसे पतित होगा-परे दुतकार दूँगा और उस नीचको—जो पवित्र चाहे है, वेश्याके पेटसे क्यो न हो—गले लगानेमें अपने आपको कृतकृत्य समझूँगा। अब यह अवसर तुम्हारे वचनकी परीक्षाका है। क्या तुमउसका पालन न करोगे?

दीनानाथ जोशसे खड़ा हो गया, और कहने लगा—मैं करूँगा।

ठीक उसी समय दरवाज़ा खुला और वही छोटा लड़का कमरेके अन्दर आया। दीनानाथ ने पूछा—क्या है?

लड़केने झुककर सलाम किया, और पत्र हाथमें रख दिया। दीनानाथने उसे खोला और पढ़ा। लिखा था—

" आर्य्य वीर, तुमने मुझे सहायताका वचन दिया था । अब उसे पूरा करनेका समय आ गया है और अगर अब पूरा न किया, तो फिर कुछ करना न करना बराबर होगा । मेरी माँने मेरे रोने-चिल्लानेकी कुछ पर्वाह नहीं की और कलकी रात उस शर्मनाक बातके लिये नियत हुई है, जिसकी कल्पनासे ही मेरा शरीर काँप जाता है । मैं शोकमें डूब रही हूँ । क्या तुम मेरी सहायताके लिए न आओगे ? संसारमें तुम्ही हो जिसे मैं सहायताके लिए पुकार सकती हूँ । क्योंकि मेरा मन.....मैंने निश्चय कर लिया है, कि अगर तुमने लोकभयसे या किसी और विचारसे मेरी सहायता करनी उचित न समझी, तो मैं डूब मरूँगी, ज़हर खा लूँगी, गाड़ीके नीचे आ जाऊँगी, घरकी छतसे कूद पड़ूँगी मगर अपनी माँका कहना कभी न मानूँगी । और क्या लिखूँ, अगर मेरी रक्षा करना मंज़ूर है, तो आज रातको बारह बजे मेरे घरके नीचे आओ, नहीं तो प्रेमके साथ आख़िरी नमस्ते । आँसू भरी आँखोंसे और धड़कते हुए हृदयके साथ केवल

तुम्हारी—"

दीनानाथने देखा, शब्द शब्दसे प्रेमकी गन्ध आ रही है और वाक्य वाक्यसे श्रद्धा और विश्वासका रंग झलकता है । ऐसे पत्रका जवाब निराशाजनक नहीं दिया जा सकता । उसने सत्यपालकी रायसे जवाब लिखा:—

"देवि ! चिन्ता न करो । भलाईका मार्ग भयसे भरा है, मगर उसका परिणाम अच्छा है । मैं बदनामी सहूँगा, विपत्तियाँ उठाऊँगा, मैं घर बार छोड़ूँगा, मैं फ़ाके करूँगा, परन्तु तुम्हारी रक्षाके लिए प्राणोंपर खेल जाऊँगा । परमात्मा तुमको धर्मपर अचल और अडोल रक्खें । रातको मेरी इंतज़ार करो ।

तुम्हारा—

दीनानाथ

६

और रातके वक्त दीनानाथ सत्यपालके साथ उस बाज़ारमें चला जा रहा था, जिसमेंसे होकर निकलना भी वह महान् पाप समझता था।

दोनों एक मकानके नीचे रुक गये। थोड़े समयके लिए प्रकाशपर अन्धकारके बादल छा गए। दीनानाथने सोचा, मैं क्या कर रहा हूँ? कोई मुझे यहाँ देख लेगा तो क्या कहेगा? जिन्होंने मेरी धुँआधार वक्तृताएँ सुनी हैं, वे मेरा यह काम सुनकर क्या कहेंगे?

सहसा अन्धकारमें प्रकाश हुआ, और दीनानाथके सामने लड़कीकी मूर्ति आ गई, जो रोती थी, तड़पती थी और सहायताके लिए पुकारती थी। ख़याल ही ख़यालमें उसने निर्दोष लड़कीके हाथ पकड़ लिये और कहा—मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा। इतनेमें पैरोंकी आहट सुनाई दी और वह लड़की नीचे उतर आई। उसका चेहरा चमक रहा था, और निर्मल आँखें मुस्करा रही थीं। उसने दीनानाथको नमस्ते की, सत्यपालको हाथ जोड़े और कहा—चलो।

दीनानाथने सत्यपालकी ओर देखा। सत्यपालने इशारा समझकर कहा—समाजके प्रेसिडेण्टके घरकी ओर चलें।

वहाँसे चलकर तीनों समाजके प्रेसिडेण्टके घरपर पहुँचे। उस समय वे सो रहे थे। नौकरको कहकर जगाया गया। परन्तु जब उनको सारी घटना सुनाई गई तो वे अवाक् रह गये और आश्चर्यसे बोले—लड़कीको निकाल लाये हो?

"जी हाँ।"

"और अब क्या विचार है?"

"पहले उसे शुद्ध कर लीजिए, यह उसकी हार्दिक इच्छा है। इसके बाद उसके ब्याह पर विचार किया जायगा, और जिसको उसके योग्य समझा जायगा, उसके साथ ब्याह दिया जायगा।

प्रेसिडेण्ट साहब कुछ देर चुप रहे। ऐसा मालूम होता था उन मनमें सचाई और भयका संग्राम हो रहा था। अन्तमें सचाई पर भय विजय प्राप्त की और वे हिचकिचाते हुए बोले—इसमें आर्य्यसमाज बदनामी है।"

सत्यपाल चुप न रह सका। जोशसे बोला—क्या हम भूल की है ?

"नहीं ?"

"फिर भयका कारण ? बदनामीके भयसे पीछे हटनेका कारण जल्दी न कीजिये, क्योंकि इसमें एक निर्दोष बालिकाके जीवनका प्र छिपा है। कृपा करके सोचिये, आपकी 'न' से हमारी पोज़ीशन क्या क्या हो जाती है ?"

प्रेसिडेण्ट साहब फिर बोले—इसमें आर्य्यसमाजकी बदनामी है।

दीनानाथ अधीर होकर बोला—मगर आपकी क्या राय है ?

प्रेसिडेण्ट साहबने उत्तर दिया—तुम्हारा साहस प्रसंशनीय है। तु जो कुछ कर रहे हो, जगतकी दृष्टिमें बुरा है; परन्तु ईश्वर की आँखों बुरा नहीं है।

"फिर आप शुद्ध क्यों नहीं करते ?"

प्रेसिडेण्ट महाशयने फिर अपना जवाब दोहराया—इसमें आर्य समाजकी बदनामी है।

सत्यपाल और दीनानाथ दोनों लड़कीके साथ वापस आये। एक टू फूटे घरमें रहनेका प्रबन्ध कर रक्खा था। वहाँ लड़कीको रक्खा औ दीनानाथ अपने पिताके पास गया। सुलखनदास पुराने विचारके आदम थे। सारा वृत्तान्त सुनकर आगबगूला हो गये और दीनानाथको भर्त्सन करते हुए बोले— मेरी आँखोंके आगेसे दूर हो जाओ। आजसे तुम न मे पुत्र, न मैं तुम्हारा पिता।

दीनानाथको बापसे इस व्यवहारकी आशा न थी। वह मनमें बड़

दुखी हुआ। सीधा सत्यपालके पास गया और बोला—भाई, अब क्या करना होगा ? बोलो।

सत्यपालने कहा—धीरज रखो। तुम्हारे कालेजके खर्चका बीड़ा मैं उठाता हूँ।

दीनानाथके सिरसे बोझ-सा हट गया। सत्यपालको गले लगाकर बोला—मैं तुम्हारा मशकूर हूँ। अब मुझे कोई चिन्ता नहीं। मैं खाने पीनेके लिए कोई ड्यूटी ले लूँगा।

सत्यपालने कहा—चिन्ता न करो, यह आँधी ज्यादा देर न रहेगी।

७

जब आर्य्यसमाजने शुद्ध करना नामंज़ूर कर दिया, तो सत्यपालने चार यार जमा किये, और उनसे सलाह की कि अब क्या करना चाहिए।

फ़ैसला हुआ कि चार पाँच मित्र मिलकर हवन करें और कन्याको शुद्ध कर डालें और फिर उसका ब्याह दीनानाथ के साथ कर दें। पस ऐसा ही हुआ। कन्याका नाम 'अमृतवती' रक्खा गया, और उसका ब्याह दीनानाथके साथ कर दिया गया। दीनानाथने एक ड्यूटी ले ली और खाने-पीनेकी चिन्ता दूर हुई।

अमृतवती अमीरीकी गोद में पली थी, अब उसे ग़रीबीका सामना करना पड़ा। कहाँ वह रेशमी साड़ियाँ, कहाँ यह सूती धोतियाँ ? कहाँ वह पलँग, कहाँ यह अब भूमबिस्तर ? कहाँ वह सैर सपाटे, कहाँ यह कमरेमें बन्द रहना ? ज़मीन आसमानका फ़र्क था। कल रानी थी आज लौंडी बन गई। मगर वह फिर भी ख़ुश थी। उसके लिए न यह ग़रीबी ग़रीबी थी, न यह क़ैद क़ैद। सारे दिन कमरेका दरवाज़ा बन्द करके बैठी रहती। जब तक दीनानाथ न आता, दरवाज़ा न खोलती। जब महीनेके बाद दीनानाथ २०) रुपये लाया, उस दिन

अमृतवतीकी आँखोंमें ख़ुशीके आँसू लहरा रहे थे। कहती थी भगवान का शुक्र है, जो यह मेहनत की कमाई मिली।

दीनानाथने यह सुना, तो उसके नेत्रों से आँसुओंकी धारा बह निकली। वह रोते रोते बोला—अमृतवति, काश! मैं इस योग्य होता कि तुझे सुख पहुँचा सकता। मगर क्या करूँ, पास पैसा नहीं, नहीं तो तुझे ज़रा भी कष्ट न होता। तू फूलों पर सोती।

अमृतवती दीनानाथ को रोते देखकर व्याकुल हो गई, और अधीर हो कर बोली—मैं जानती हूँ, तुमने मेरे कारण बहुत दुख पाया है। मैं न होती तो तुम अपने पिताके यहाँ सुख से रहते। यह ग़रीबी मेरे ही कारण से है। परमात्मा करे, मैं तुम्हारी सेवा कर सकूँ।

८

अमृतवतीकी माँने जब सोनेकी चिड़ियाको हाथसे निकलता देखा, तो उसके हाथोंके तोते उड़ गए। पहले पहल तो यह राय हुई कि चलकर उड़ा लायँ। पर उड़ाए कौन? बहुतसी कमेटियाँ हुईं, बड़ी बड़ी कान्फरेंसें हुईं। मगर जब सत्यपाल और उसके मित्रोंकी रुकावटें देखीं, तो मुक़दमेका फ़ैसला हुआ, और अदालतका दरवाज़ा खटखटाया गया। दीनानाथकी दो हज़ार रुपयेकी ज़मानत हो गई। यह ज़मानत सत्यपालके पिताने दी।

ज़मानत देकर दीनानाथ घर वापस आया, तो अमृतवती घबरा रही थी। गलेसे लिपट कर बोली—क्या हुआ?

दीनानाथ ने उसे सब हाल सुनाकर पूछा, अब क्या करना चाहिये? बोलो।

अमृतवती ने पूछा—मुकदमा किसकी अदालतमें है?

"डिपुटी शामदासकी अदालतमें।"

"वह तो बहुत सख्त आदमी है।"

"सुना तो ऐसा ही है।"

अमृतवती चुप हो गई। इतने में दीनानाथने कहा—एक बात और भी है। उन्होंने कमेटी के पुराने काग़ज़ात बरामद करवाये हैं और यह साबित किया है कि तुम अभी नाबालिग़ हो।

अमृतवतीने ठंढी साँस भरी, और कहा—यह तो बहुत बुरी बात है।

"फिर ?"

"फिर तुम डिपुटी शामदासके घर जाओ, और उनके पैर पकड़ लो और सब कुछ साफ साफ कह सुनाओ और उनसे दयाके नाम पर अपील करो। बड़े आदमी हैं, निराश न करेंगे।"

दीनानाथ के मनमें यह बात बैठ गई। वे सायंकाल शामदासके घर गये और उनके पैर पकड़कर बैठ गये।

शामदास बोले—यह क्या मूर्खता है, साफ साफ कहो बात क्या है ?

दीनानाथ की भरी जवानी थी। मूर्खताका शब्द न सह सका। उठ कर खड़ा हो गया और बोला—श्रीमान् दया करें, तो दो जीवन बच सकते हैं।

शामदास दो तीन मिनिट सोचते रहे, फिर बोले—तुम्हारा वही केस है जिसमें लड़कीको भगाया गया है ?

"जी हाँ।"

"उसमें मैं कुछ नहीं कर सकता।"

दीनानाथ जो लम्बी चौड़ी भूमिका याद करके लाया था सब भूल गया। उसके मुँहसे केवल इतना ही निकला—मुझ पर दया करें।

"मैं दया करनेके लिए न्यायकी कुर्सीपर नहीं बैठा। न्याय करने बैठा हूँ।"

दीनानाथ चुपचाप वापस लौट आया, और अमृतवती से बोला, मेरे किये कुछ न होगा।

अमृतवतीने यह सुनकर कुछ सोचा, और फिर कहा–अच्छा, अब मुझे भाग्यकी परीक्षा करना है। यह कहकर वह दीनानाथके साथ डिपुटी साहबके घरको रवाना हुई। रात हो चुकी थी डिपुटी साहबकी स्त्री सोनेकी तय्यारियोंमें थी। इतने में एक कमसिन सुन्दरी उनके चरणोंपर आ पड़ी, और रोते रोते बोली—मुझपर दया करो।

डिपुटी साहब की स्त्रीने उसका सिर पैरों परसे उठाया, और कहा—बेटी क्या है? और तुम कौन हो?

अमृतवती ने बिलख बिलखकर कहा—मैं एक बेसवाकी बेटी हूँ। मेरी माँ मुझे व्यभिचार करनेपर मजबूर करती है। मगर मैं ऐसे निर्लज्ज जीवनसे मरना ज़्यादा पसन्द करती हूँ। मैं हिन्दू हूँ, मैं हिन्दू थी। मेरी माँ हिन्दू थी, और सम्भव है मेरा बाप भी हिन्दू हो। मैं हिन्दू होकर और हिन्दू रहकर मरना चाहती हूँ। क्या यह पाप है? क्या यह अपराध है? मैं धर्म्मके मार्गपर चलना चाहती हूँ। मैं धर्म्मपथपर चलती हुई मरना चाहती हूँ। क्या यह पाप है?

"नहीं।"

"मेरा मुकदमा डिपुटी साहबकी अदालतमें है। मैं ग़रीब हूँ, मैं कंगाल हूँ, इसलिए ठण्डे श्वासों और गर्म आँसुओंकी सिफ़ारिश लेकर आपके पास आई हूँ। क्या मेरी बिनती न सुनोगी?"

डिपुटी साहबकी स्त्री अमृतवतीके रूप और सौन्दर्य्यको देखकर दंग रह गई थी। उसकी हृदयग्राहिणी बातें सुनकर और भी अचम्भेमें आ गई। कुछ देर सोचती रही, और फिर नर्मीसे बोली—बेटा! मैं तुम्हें पहचान गई हूँ। तुम्हारी चर्चा आज छोटे-बड़े सबकी ज़बानपर है। तुम धन्य हो, तुम्हारा साहस धन्य है। मगर मैं क्या करूँ? विवश हूँ। तुम्हारी फरियाद भगवान सुन सकता है, परन्तु डिपुटी साहब नहीं सुन सकते।

"क्यों?"

"उनका मन बड़ा कठोर है। उनपर न गर्म आँसुओंका असर होता

है न ठंडी आहोंका। न उन्होंने आजतक किसीकी सुनी है न सुनेंगे। मैं तुम्हारे लिये सब कुछ कर सकती हूँ, मगर वे तुम्हारी बात तक न सुनेंगे।

अमृतवती थोड़ी देर तक चुप रही। फिर बोली—आपके यहाँ कोई बेटी है?

"हाँ।"

"फिर निराशाका कोई कारण नहीं। परमात्माके लिए मुझे डिपुटी साहबका कमरा दिखा दो। औलादवालेके दिलमें दया अवश्य होती है। उसे केवल छेड़नेकी ज़रूरत है, स्रोत वह निकलता है। मैं उनकी दयाको जगा लूँगी। मैं उनकी औलादके नामपर उनसे दयाकी भिक्षा मागूँगी। मैं उनके आगे रोऊँगी। चिल्लाऊँगी, गिड़गिड़ाऊँगी। न सुनेंगे, फिर सुनाऊँगी, फिर सुनाऊँगी।"

शब्द हृदयवेधक थे। पासके कमरेमें डिपुटी साहब सुन रहे थे। उनका भी धैर्य छूट गया। रोते हुए बाहर निकल आये और जोशसे बोले—बेटी, जाओ, मैं आजतक कर्त्तव्यच्युत न हुआ था। आज तुम्हारे कारण यह प्रण तोड़ दूँगा। तू कण्टक-वनका फूल है। तू असुरोंमें देवी है। तू पीतलके टुकड़ोंमें सोनेकी डली है। तू कौओंमें हंसिनी है। मेरे कानोंने आज तक किसीकी न सुनी थी। आज उन्होंने तेरी सुनी।

९

डिपुटी शामदासने लम्बी लम्बी तारीख़ें डालना आरम्भ किया, इस तरह छः मास बीत गये। अमृतवती जब बालिग़ हो गई, तब उसके बयान की बारी आई। उसने बयान दिया—मैं सन्मार्ग पर चलना चाहती हूँ। मेरी माँ मेरे व्यभिचार पर गुलछर्रे उड़ाना चाहती है। मैं इस राह पर थूकती हूँ और दीनानाथको अपनी इच्छासे अपने जीवनका साथी चुन चुकी हूँ।

डिपुटी साहबने मुक़दमा ख़ारिज कर दिया। लोग हैरान रह गए। मगर किसी में बोलने की हिम्मत न थी।

उस दिन दीनानाथ और अमृतवती दोनों ख़ुश थे। उनके चारों तरफ़ जो अन्धकार था, वह दूर हो चुका था। जिन दीवारोंसे उदासीकी हिचकियाँ निकला करती थीं, वे भी उस दिन मुस्करा रही थीं।

साँझको दीनानाथ बाहर गया हुआ था कि सत्यपाल हँसता हुआ घरके अन्दर आया और बोला--भाभी! मिठाई खिलाओ तो एक शुभ समाचार सुनाऊँ।

"सुन चुकी हूँ।"

"क्या?"

"दावा खारिज़ हो गया।"

"नहीं और है।"

"क्या?"

"पहले मिठाई खिलाओ, पीछे बात कहूँगा।"

अमृतवतीने हँसकर कहा, तुम्हारी इतनी उम्र हो गई, मगर तुम अभी तक बच्चे ही रहे।

सत्यपालने कहा--अच्छा भई, न खिलाओ। सुनो—दीनानाथ बी० ए० पास हो गया है, और उसे दिल्लीसे सौ रुपया महीनाकी औफर भी आ गई है। अब भी मिठाई खिलाओगी या नहीं?

इतनेमें दीनानाथ मुस्कुराता हुआ अन्दर आया और अमृतवतीसे बोला--इन हज़रतके फन्देमें आकर कुछ ख़र्च न कर बैठना। कल दिल्लीकी तय्यारी करो।

प्रतिकार

१

लाल मिरच कैसी सुन्दर है, मगर इधर ज़बान पर रखा, उधर बिच्छूने काट खाया। मनुष्योंमें भी ऐसी लाल मिरचें बहुत हैं, जो देखनेमें सुन्दर सलोनी मनोहारी और मनोरञ्जक होती हैं, परन्तु ज्यों ही निकट हुए, हाथसे हाथ मिला, सुन्दर पुष्प तो दृष्टिसे ओझल हो गया, काँटा हाथमें लगा और शरीरको चीरता हुआ दिलमें जा लगा। समझदार लोग फूलसे पहले काँटेको देखते हैं जो हरी हरी पत्तियोंके नीचे छुपा रहता है और फूल छूनेसे पहले ही हाथको लहूलूहान कर देता है। रामसिंह भी इसी तरहकी लाल मिरच था। देखनेमें सुन्दर, स्वभावका रंगीला, सदा प्रसन्न रहनेवाला, मगर हृदयका काला। वह शक्लका जितना सुन्दर था मनका उतना ही असुन्दर था। बगलेकी तरह उसकी काया सफ़ेद थी, परन्तु शरीरके अन्दर धड़कनेवाला दिल कौएके समान काला था। उसमें छल था, कपट था और कुटिलता थी। उसकी बातें

क्या थीं मायाका एक जाल था, जो अबोध भोले भाले मनुष्योंको जकड़ता था और मछलीकी नाईं विवश और व्याकुल कर देता था। उसकी लेखनीमें बल था। लिखता था और मुग्ध कर देता था। बोलता था तो घर द्वार रसमें मग्न हो जाते थे। उसके सहपाठी नवयुवक उसकी वक्तृता सुनकर कहा करते थे कि तेरी ज़बान पर सरस्वती बसती है। वह अमीरका पुत्र था, रूपवान् था और बी० ए० क्लास में पढ़ता था। न खाने की फिक्र न पहनने की चिन्ता। दिन रात बनाव-सिंगार में लगा रहता था, और सौन्दर्य्य सौन्दर्य्यको ढूँढ़ता था। प्रोफेसर मोतीलाल के यहाँ जाना आना था। उसकी जवान बेटी ललिताने रामसिंह को देखा। रामसिंहने उसे देखा। लोभी आँखों ने लजीली आँखोंको प्रेमका संदेसा दिया, जिनमें उत्सुकताका रंग छुपा हुआ था, जिनमें श्रद्धाकी झलक थी। धर्म और संयम के बन्धन पहले ही ढीले थे, अब लोकनिन्दा और भयकी दृढ़ दीवारें भी काँप कर गिर गईं।

प्रोफेसर मोतीलालकी ग़ैरहाज़री में भी रामसिंह आने जाने लगा। यह बात ऐसी न थी जो छुपाये छुपती। गलीसे मोहल्लेमें और मोहल्लेसे बाजार में उड़ने लगी। अब जबान जबान पर यही चर्चा थी, और घर-घरमें यही कथा थी, मगर मोतीलालको इसका कुछ पता न था।

२

लैम्प जल रहा था। प्रोफेसर मोतीलाल मेजके सामने बैठा चिन्ता के साथ एक पत्र पढ़ रहा था। जान पड़ता था कि एक एक शब्द उसके दिल पर बरछियाँ चला रहा है। पत्र समाप्त हुआ, प्रोफेसर मोतीलालने एक ठण्डी साँस भरी और दुःख छुपाये न छुपा, आँसुओं के रूप में नेत्रों से बाहर बह निकला। एक बार फिर पत्र उठाया और पढ़ने लगा—

"अन्धकारके निवासी!

तुझे कुछ अपने घरका भी पता है ? लोग रातको सोते हैं और सोते में भी होशियार रहते हैं। तुम दिनको भी सोते रहते हो और जागते हुए भी आँखें नहीं खोलते। बाजारमें जाओ, मोहल्लेमें जाओ, शहरमें जाओ, बाहर जाओ, तुम्हारी बदनामीकी धूल सब ओर आकाशको जा रही है।

मगर तुम हो कि इस लोकमें ही नहीं रहते। रामसिंह तुम्हारी ग़ैरहाज़रीमें तुम्हारे घर आता है और तुम्हारी कुँवारी बेटी मुस्करातो हुई आँखोंसे उसका स्वागत करती है। इसमें भी कुछ भेद है। अगर अब भी न समझो तो फिर किसीका क्या दोष ? ख़बर देना हमारा कर्त्तव्य था, सो पूरा कर दिया, अब जो उचित समझो वह करो।"

दो बार पत्र पढ़कर मोतीलालका मुखमण्डल तमतमा उठा और नेत्रोंसे अग्निकी चिनगारियाँ निकलने लगीं। नौकरने कहा और ललिताने सुना कि बाबूजीका जी आज अच्छा नहीं है, रोटी खानेको जी नहीं ललिताको पिताके साथ बहुत प्रेम था, दौड़ती हुई आई और प्यारसे पिताकी ओर देखकर बोली—आज क्या है ?

मोतीलाल ने उत्तर दिया—पेट में कुछ गड़बड़ है। खाने को जी नहीं चाहता।

ललिताने कहा—फिर ?

मोतीलालने उत्तर दिया—चिन्ताकी बात नहीं है। तुम आराम करो, एक फ़ाका करके ठीक हो जाऊँगा। ललिता व्याकुल थी, कि बात क्या है, जो पिता क्रोधसे उत्तर दे रहा है। मगर फिर कुछ सोच कर चुप हो रही। मनके पापने जीभ पकड़ ली।

दूसरे दिन मोतीलालने कालेजमें रामसिंह पर आँख रखी। बाइबल-का घण्टा आया, साथ लगता घण्टा खाली था और उससे अगला भी कोई ज़रूरी न था। इधर उधर देखा, रामसिंहका पता न था। एक छात्र से मालूम हुआ कि वह शहरकी तरफ़ गया है। क्रोध सह न सका।

प्रोफेसर मोतीलालने बाईसिकल उठाई और घरकी तरफ़ चल दिये।

३

जिस तरह कोई मीठा-सा सुपना देखनेवाला आदमी जगानेवाले पर झुँझला उठता है, उसी तरह जब रामसिंहने ललितासे प्रणय और प्रेमसे सनी हुई बातें करते हुए दरवाजेका खटका सुना तो उसे ज़हरसा लगा। ललिताने घबराकर देखा तो मोतीलाल सामने खड़ा था। रामसिंह लज्जासे पानी पानी हो गया और ललिताकी आँखें बापके पाँव पर गिर कर माफ़ी माँगने लगीं।

मोतीलालने कहा—रामसिंह, तुम मेरे साथ बैठकमें आओ। रामसिंह चुपचाप उनके साथ चला गया, ललिताने ठण्डी साँस भरी। कुर्सीपर बैठकर और रामसिंहको बैठनेका इशारा करके मोतीलालने कहा—जो हो गया सो हो गया, मगर अब बताओ, क्या इरादा है?

रामसिंहने सिर नीचा किये हुए जवाब दिया—जो आप कहें।

मोतीलाल—तुम्हें ललितासे प्यार है?

रामसिंहने उत्तर न दिया।

मोतीलालने कहा—लज्जाकी कोई बात नहीं, साफ़ साफ़ कहो।

रामसिंहने धीरे से जवाब दिया—हाँ है।

मोतीलालने पूछा—उसे तुमसे प्यार है?

रामसिंहने जवाब दिया—हाँ है।

मोतीलाल ने कहा—फिर तुम उससे ब्याह कर लो। यह सबसे अच्छी बात है। क्यों?

रामसिंहने आश्चर्यसे मोतीलालकी तरफ़ देखकर कहा—मैं तैयार हूँ।

मोतीलालने कहा—तुमने भूल की और ललिताने भी भूल की। अगर तुम मुझे पहले बता देते तो इतनी मिट्टी क्यों उड़ती और मेरा मुँह क्यों काला होता?

रामसिंहने सिर नीचा करके कहा—सचमुच भूल हो गई।

मोतीलाल बोला—ख़ैर, जो हो गया हो गया। अब भविष्यतमें बदनामी न होगी।

यह कहा और रामसिंहको गलेसे लगा लिया।—बेटा, गिरना पाप नहीं, गिरकर गिरे रहना पाप है। मेरी यह बातें सुनकर लोग मुझे निर्लज्ज कह दिया करते हैं, मगर मैं उनकी परवाह नहीं करता।

४

इस घटनाको छः मास बीत चुके हैं। अब प्रोफ़ेसर मोतीलाल वह मोतीलाल नहीं, जो पहले थे। अब वह सदा उदासीन, सदा दुखी और सदा अशान्त और व्याकुल रहते हैं। रामसिंहकी प्यासी आँखोंने अपने लिये नयी भूमि और नया आकाश पसन्द कर लिया है। अमीरका लड़का एक निर्धन प्रोफेसर की कन्याको ब्याहे, उसके लिये यह असह्य था। विलासप्रिय लोग प्रेम करना नहीं जानते। उन्हें प्रतिपल नये खिलौने की चाह होती है और उसके बाद वह दूसरी वस्तु ढूँढ़ लेते हैं।

अब वह दिनके चौबीस घण्टे और अठवाड़ेके आठ दिन चम्पाके प्रेममें मग्न रहने लगा। ललिताने यह सुना तो उसकी जान निकल गई; और प्रतिकारका भाव हृदय में चुटकियाँ लेने लगा।

प्रोफेसर मोतीलाल अपनी लड़की की दुरवस्था को देखते थे और मन ही मनमें कुढ़ते थे। उनका जो कुछ था, ललिता के लिए था। स्त्री मर चुकी थी, पुत्र भी मर चुके थे। निराशा और आशा ललिताका मुँह देख देखकर जीते थे। और जब उन्हें वहाँ भी निरुत्साहका रंग झलकता हुआ नज़र आता था तो उनके हृदयमें भाले चुभे जाते थे और मन व्याकुल हो जाता था। उन्हें रामसिंहपर रह रहकर क्रोध आता था। मगर कुछ कर न सकते थे। रामसिंह अब अधिक उद्दण्ड हो गया था और कालेज में

भी उनका अपमान कर दिया करता था। अत्यन्त कठोरप्रकृति प्रोफ़ेसर उससे कुछ न कहता था, यह देखकर दूसरे विद्यार्थी हँसते थे।

७

काँपते हुए हाथोंसे रामसिंह ने तार खोला। उसे पढ़ा और चेहरेका रङ्ग उड़ गया। उसके हाथ काँपे, उसके पाँव काँपे, उसका सिर काँपा, उसका शरीर थर्रा गया और वह गिरनेको था कि उसके मित्र त्रिलोचन-दासने आकर उसे लँभाल लिया। दुखी आदमी जब स्नेह और सहानु-भूतिका शब्द सुनता है, तो आँखुओंकी झड़ी बँध जाती है। त्रिलोचन-दासको देखते ही रामसिंह बिलख बिलखकर रोने लगा और हिचकि-योंसे उसका दम रुक गया। त्रिलोचनदासने पूछा—रामसिंह, क्या बात है?

रामसिंहने तार त्रिलोचनदासकी तरफ़ बढ़ा दिया। त्रिलोचनदासने पढ़ा और ठण्ढी साँस भर कर कहा—निःसन्देह तुम पर बिजली गिरी है मगर अभी तो आशा है।

रामसिंहने जमीनकी तर्फ देखते हुए कहा—अब कोई आशा नहीं भाई। मेरा मन बैठा जा रहा है। मेरा दिल कहता है, कि सब कुछ खत्म हो चुका।

त्रिलोचनदासेने कहा—तुम जल्दी घर जाओ, इलाज करो, वह बच सकती है।

रामसिंहने उसी समय बिस्तरा बाँधा और स्टेशनकी राह ली। त्रिलोचनदाससे कहा कि मेरी ओरसे अरजी दे छोड़ना, सात आठ दिनमें लौट आऊँगा।

लाहौर पहुँच कर जो देखा तो चंपा बेसुध पड़ी थी। प्रेमके जोशमें लाज और व्याधिके भयको एक ओर रखकर रामसिंह अपनी पत्नीसे लिपट गया। चंपाने नेत्र खोले और उसे देख कर कहा—आप आ गये?

मुझसे परे रहिए, कहीं आपको भी कुछ न हो जाय। मगर रामसिंहने उसे और भी ज़ोरसे गले लगा लिया और उसके नीले अधरोंसे अधर मिला दिये। इलाज हो ही रहा था, अब और भी सावधानीसे होने लगा। रामसिंहके पिताने रामसिंहको समझाया कि तुम बच कर रहो, बीमारी बड़ी भयंकर है। मगर उसने एक न सुनी। परिणाम यह हुआ कि न तो चंपा बच सकी और न रामसिंह रोगसे बच सका। उसे भी प्लेग हो गई।

६

पृथ्वीपर कैसी कैसी घटनायें होती हैं और आकाश कैसे कैसे रंग बदलता है। अभी प्रभात था, अभी साँझ हो गई। जहाँ बाजे बजते थे, वहीं शोकके करुणामय स्वर और हाय हायके आर्त-चीत्कार होने लगे। रामसिंह जो सोनेके पलनेमें पला था और उसने कभी कष्ट न देखा था वह बीमारीसे लाचार पड़ा था कि माता पिताको भी इस संक्रामक रोगने दबा लिया। रामसिंह अभी बीमार ही था कि माँ—बाप दोनों चल बसे। नौकर-चाकर पहले ही चम्पत हो चुके थे। अब सारे घरमें कोई उसके मुँहमें पानी टपकानेवाला भी न था। होशमें आकर कराहता रहता था और तड़पता था। जोरसे, इतने जोरसे जितना कि उसके कण्ठमें बल था, वह पुकारकर पानीके लिए विनती करता था। कभी कभी कोई पड़ौसी उसे पानीका प्याला दे जाता और भाग कर बाहर निकल जाता था।

ऐसे अवसरपर चोर उचक्कोंकी चाँदी हुआ करती है। मैदान साफ़ देखकर एक रातको घरमें चोर आ घुसे और सब कुछ लूट लाटकर चलते बने। जो कल लाखोंका मालिक था, आज कौड़ी कौड़ी को मुहताज हो गया।

७

प्रचण्ड सूर्यकी प्रखरतर गरमीमें एक स्त्री रामसिंहके कमरेमें दाख़िल हुई। उसके साथ एक डाक्टर भी था। स्त्रीके मुख पर एक नक़ाब थी। वह अधीरतासे डाक्टरकी सम्मतिकी प्रतीक्षा कर रही थी। रामसिंह बेसुध था। डाक्टरने परीक्षा करके कहा—यह बच सकते हैं।

स्त्रीने जवाब दिया—तो फिर आप अच्छी तरह इलाज करें। मैं आपको खुश करूँगी। इसका आप ख्याल न करें।

डाक्टरने कहा—भली लड़की! तुम चिन्ता न करो। रुपयोंका विचार मुझे उस समय होगा जब ये बिस्तरसे उठ खड़े होंगे।

उस दिनसे लहू पसीना और रात दिन एक करके उस स्त्रीने रामसिंहकी सेवा शुश्रूषा करनी शुरू की। रामसिंहपर निरन्तर मूर्च्छा रहने लगी और स्त्रीने सात दिन रात आँख न झपकाई। हर समय रामसिंहके सिरहाने बैठी रही और वक्त पर दवा पिलाती रही।

सातवें दिन डाक्टरने कहा—अब कोई भय नहीं है। यह शीशी लो, दिनमें तीन बार पिलानी है। अब इनको कोई खतरा नहीं है।

नक़ाबवाली स्त्रीने हाथसे सोने के कड़े उतारे और डाक्टर की सेवामें भेंट किये। डाक्टरने न, न, की मगर रुपया देख कर छोड़ना ज़रा कठिनसी बात है, ले लिये और चल दिये। डाक्टरके जानेके बाद रामसिंहने कहा—क्या मैं जान सकता हूँ कि मेरे उपकार करनेवालेका नाम क्या है?

नक़ाबवाली स्त्रीने कहा—मैं ललिता हूँ।

जो दशा वज्रके गिरनेसे मनुष्यकी होती है वही दशा रामसिंहकी यह नाम सुनकर हुई। उसने कहा—ललिता?

ललिताने उत्तर दिया—जी हाँ। ललिता, जिस दिन आपने मुझे ग़रीब जान कर अपनी सेवा लेना अस्वीकार किया, उसी दिन मैंने

आपसे बदला लेनेकी प्रतिज्ञा की थी। मेरी प्रतिज्ञा पूरी हो गई। इससे सख़्त बदला मैं नहीं ले सकती थी।

रामसिंहने कहा—ललिता, मुझे क्षमा करो, अब मैं तुम्हारा नौकर बनकर रहूँगा।

ललिताने उत्तर दिया—शरमिंदा न कीजिए। मैं एक ग़रीब प्रोफेसरकी बेटी हूँ।

यह कह कर ललिता बाहर निकल गई। रामसिंहने उसे ढूँढ़ा, मगर वह न मिली। उसका बाप भी इसी शोकमें कुढ़ कुढ़ कर मर गया। ललिताका कोई पता न मिला।

८

"दरवाज़ा खोलो, दरवाज़ा खोलो।"

पिछले पहरका समय था, त्रिलोचनदास देरसे सोया था, इसलिए निद्राका मद उसके नेत्रोंको अभी तक दबाये हुए ही था कि 'दरवाज़ा खोलो, दरवाज़ा खोलो' का शब्द सुनकर बड़बड़ाता हुआ उठ बैठा। बाहर आया तो रामसिंह सामने खड़ा था। उसके मुंहका रंग कपासके फूलों की तरह पीला था और आँखों से आंसू बह रहे थे। त्रिलोचदासने उसको अन्दर लेजाकर चारपाई पर बैठा दिया और कहा—कहिए क्या हाल है?

रामसिंहने उत्तर दिया—क्या पूछते हो, बहुत दुखी हूँ। रातकी बात कहता हूँ। ललिताकी तसवीर देखता देखता सो गया। स्वप्नमें क्या देखा कि गंगाके किनारे फूलोंकी कुटिया है जिसमें शान्तिका राज है और आनन्दका पवन चल रहा है। गंगाके जलमें हर्ष और उमंगकी तरंगें उठती हैं और दर्शकोंको ऐसी भूमिपर पहुँचा देती हैं जहाँ प्रीतिका निवास और प्रेमका राज्य है, जहाँ आदमी नहीं, आदमीकी कल्पना ही पहुँच सकती है। उस स्थानपर एक स्त्री विलख विलख कर रोती थी और

तड़पती थी। मैंने भय और आश्चर्यसे अपने मनसे प्रश्न किया कि क्या ऐसे मनोहर दृश्यमें भी रोने कराहने और तड़पनेकी सम्भावना हो सकती है? उसी समय मैंने देखा कि स्त्रीने एक कागजका टुकड़ा निकाला और उसे आखों से लगा कर बारम्बार चूमने लगी। मैंने चेष्टा की, आगे बढ़ा और यह देखकर मैं घबरा गया कि उसके हाथमें मेरा फोटो (चित्र) है। मैंने उसका नक़ाब उलट दिया और यह देखकर मेरे आनन्द और आश्चर्यकी सीमा न रही कि मेरे चित्रको छातीसे लगा कर रखनेवाली और मेरी यादमें रोने तड़पनेवाली स्त्री ललिताके सिवाय कोई दूसरी न थी।

ललिताने मुझे देखा और मुझसे लिपट गई। मैं उसे ज़ोरसे गले लगा कर और उसका मुख चूमचूम कर आँसुओंसे उसके मुँहको भिगोने लगा। यह आँसू दुःखके नहीं आनन्दके थे, उनमें एक खास रस था। सहसा वह सँभली और पीछे हट गई। उसका सिर नीचे झुक गया और वह बोली—मैं तुम्हारे लिए रोती हूँ और तुम्हारे लिए तड़पती हूँ। इस निर्जन वनमें मेरा कौन है? तुम्हारे प्रेममय चित्रको देखती हूँ और दुःखके आँसू बहाती हूँ। मगर तुम्हारे विछोहको इतने दुःखके साथ अनुभव करती हुई भी तुम्हारे सामने नहीं आती ताकि तुम्हें कष्ट न हो। क्योंकि मैं एक ग़रीब प्रोफेसरकी बेटी हूँ। तुमसे प्रतिकार लेना था मगर जी नहीं चाहता।

इतने में मेरी आँख खुल गई। मगर वह माधुरी मूर्ति आँखोंसे ओझल हो गई। त्रिलोचनदास! इससे ज़्यादा सख्त प्रतिकार क्या हो सकता है कि मैं उसकी यादमें तड़पूँ, वह मेरी यादमें तड़पे और फिर भी हमारा मिलाप न हो।

त्रिलोचनदासने ठण्डी साँस भरी और कहा—यह काँटे तुम्हारे ही बोए हुए हैं।

न्यायकी परख

१

जालन्धरके पण्डित जसवन्तराय बड़े भले आदमी थे। उनकी सचाई और न्यायकी धूम सारे पंजाबमें थी। कहते हैं उनका बचपन अत्यन्त ग़रीबीमें कटा था परन्तु अपने परिश्रम और उत्साहसे उठते उठते वे 'सबजज' की पदवी तक जा पहुँचे थे।

निस्सन्देह यह पदवी एक असाधारण बात थी, मगर पं० जसवन्त-रायमें अभिमानका नाम तक न था। वे कंगाल से कंगाल आदमी को भी 'आप' कहकर बुलाते और बूढ़े-बुज़ुर्गोंके सामने आँख उठानेका साहस न करते थे। जो बीस रुपयेके क्लार्क होकर अपने माता पितासे बातचीत करना अपमान समझते हैं उनको वे बहुत फटकारा करते थे।

सभी जानते हैं कि कचहरी प्रोत्साहनाका क्षेत्र और प्रलोभनोंकी भूमि है। यहाँ रिश्वत लेना और देना दोनों पाप नहीं समझे जाते। महँगीके समयमें सौ सौ रुपयेके कर्म्मचारी मुश्किलसे ख़र्च चला

सकते हैं और महीनेके आखिरी दिनोंमें बनिये, हलवाई और फल वालों से उधार मँगवाते हैं। मगर कचहरीका बीस रुपयेका नौकर भी कभी तंग नहीं होता। उसका दिन रुपया जमा करने और रात गिननेमें गुज़रती है। सरकारका दोष नहीं, इसको दूर करनेके लिए नियम बनाये गये हैं, सख़्त सज़ाएँ दी जाती हैं, मगर लोभी दिल परवाह नहीं करते। बोलती हुई वाणी झिझकती है तो पापी नेत्र अपराधी आँखोंसे देखनेमें लेन-देनका निर्णय करना शुरू कर देते हैं। कुछ 'नाँ नहीं' होती है। कुछ 'हूँ हाँ' होती है। शरीर निकट सरकते हैं, सिर नीचे झुक जाते हैं, हाथ जेबोंमें घुसते हैं। फिर कागजोंकी सरसराहटका शब्द होने लगता है और नोट एकके हाथसे निकलकर दूसरेकी जेबमें चले जाते हैं। आँखें पहचानती हैं, हाथ तौलते हैं, बुद्धि अनुमान करती है। इन बातोंसे साहस पकड़कर मुख भी खुल जाते हैं। एक तरफ़से हलकी सी प्रतिज्ञा होती है, दूसरी तरफ़से शतशः धन्यवाद दिये जाते हैं और इस विधिसे वह व्यवहार होता है जिसको भोलेभाले लोग रिश्वत या घूस कहते हैं और लेनेवाले 'ऊपरी आमदनी' के नामसे पुकारते हैं।

इसी तरीक़ेसे गुण्डे लोग आनन्द उड़ाते हैं और साधुस्वभाव ग़रीब लोग लज्जित होते हैं। संसारमें झूठे तराजू इज़्ज़त पाते हैं और ये 'नगद नारायण' मान, बल और सौन्दर्यकी तरह न्यायको भी खरीद लेता है।

२

ऐसे अवसर कई बार सामने आये, मगर पंडित जसवन्तरायका मन चलायमान नहीं हुआ। चाहते तो दिनोंमें हज़ारों समेट लेते, मगर न्यायशील आदमी थे, धर्म्मकी कमाई पर बैठे रहे। जो कुछ आया खर्च हो गया। राजसी स्वभाव बन चुका था। कभी कुछ बचानेका ध्यान न आया। इसी तरह दिन गुज़र रहे थे कि कन्याका विवाह निकट आ गया। एक दिन बैठकमें बैठ सोच रहे थे कि खर्च कैसे चलेगा?

इतनेमें पत्नीने कहा—कुछ खयाल भी है ?

जसवन्तराय चौंक कर बोले—क्या कहूँ, दिन रात यही चिन्ता खाये जाती है। अब तक आँखें बन्द थीं। अब अपनी फ़िजूल-ख़रची पर पछताता हूँ।

"इससे क्या होता है ?"

"सच कहती हो।"

"फिर ?"

"फिर क्या, दो हज़ार रुपया है, इसीसे काम चलाओ। ब्याह नियम है, कोई दण्ड नहीं है। उधार लेकर ब्याह करना भारी भूल होगी।"

लक्ष्मीके मनमें पता नहीं क्या विचार जड़ पकड़ चुके थे; इन शब्दोंसे उसे धक्का-सा पहुँचा। भर्राये हुए स्वरसे बोली—लोग क्या कहेंगे ?

जसवन्तरायने उत्तर दिया—हम देनेवाले हैं, हमारा जमाई लेनेवाला है। जो कुछ हो सकेगा दे देंगे, लोगोंका क्या अधिकार है कि व्यर्थ की बातें करें।

निराश मनसे लक्ष्मीने फिर कहा—नाक कटवाओगे ?

जसवन्तराय क्रोधसे काँपते हुए खड़े हो गये और चिल्लाकर बोले—मैं उन आदमियोंमेंसे नहीं हूँ जो दो घड़ीकी वाहवाह पर अपने सारे जीवनके सुख न्यौछावर कर देते हैं और मरते दम तक कर्ज़से मुक्त नहीं हो सकते। वे नाक बचाते है मगर गर्दन कटवा देते हैं। सम्बन्धियोंमें मूछों पर ताव दे लेते हैं मगर घरमें जाकर पछताते हैं, और हाथ मलते हैं।

लक्ष्मी रोते रोते बोली—हरिचन्दको जानते हो ? मामूली मुंशी है। उसने अपनी कन्याकी शादीमें दस हज़ार रुपया दिया था। हम सारा काम दो हज़ारमें चलायँगे ? ज़रा सोचो मैं स्त्रियोंमें क्या मुँह दिखाऊँगी ?

जसवन्तरायका क्रोध उतर चुका था, लक्ष्मीके पास आकर बोले—अच्छा अब तुम बताओ ! तुम्हारी इच्छा क्या है ?

लक्ष्मीने उनके हाथ झटककर कहा—चलो हटो, बेटी आपकी है। मैं कौन जो आप मेरी इच्छा पूछते हैं ?

जसवन्तराय हँसकर बोले—तुम मेरी रानी हो, मेरी मलिका हो। जो कहोगी करूँगा, परन्तु इतना तो सोचो.....यहाँ पहुँच कर जसवन्तरायने फिर धीरता ग्रहण कर ली—इतना तो सोचो कि क़र्ज़ लेनेसे लाभ ?

लक्ष्मीने कृत्रिम क्रोध दिखाते हुए कहा—लाभ ?

"हाँ हाँ लाभ !"

"लाभ यह है कि नाक बच जायगी।"

जसवन्तरायने फिर अपना लम्बा चौड़ा उपदेश आरम्भ किया और बड़े ज़ोरसे सिद्ध करना चाहा कि नाककी अपेक्षा गर्दन ज़्यादा मूल्यवान् है। परन्तु लक्ष्मीके मनपर ज़रा भी प्रभाव न हुआ। इतना परिश्रम वे टेढ़ेसे टेढ़े अभियोगका निर्णय करते समय न करते थे जितना इस अवसरपर किया। मगर लक्ष्मी अपने हठ पर तुली रही। आख़िर वही हुआ जो हिन्दू घरोंमें विवाह-शादीके अवसरों पर हुआ करता है। कुछ आँसुओंने, कुछ क्रोधने, कुछ झूठी रुखाईने, कुछ लाड़-प्यारने मिलमिलाकर पत्नीकी विजय करा दी।

जसवन्तराय दूसरोंका फ़ैसला करते समय कठोरताका व्यवहार करते थे, मगर यहाँ वह कठोरता न चल सकी। उन्होंने हँस कर कह दिया—बहुत अच्छा हज़ूर ! जो आपकी इच्छा है वही होगा। मेरी क्या मजाल; जो बोल जाऊँ।

पढ़ा लिखा मूर्ख, मूर्खा नारीके सामने झुक गया और अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मारनेकी तय्यारियाँ करने लगा।

३

लक्ष्मी मुँह फुलाकर बोली—मैं श्रीमती लक्ष्मीदेवी रानी ! और

मेरी बात न मानी जाय, यह हो ही नहीं सकता।

जसवन्तरायके मनमें फिर विचार हुआ कि ऐसी बात मंज़ूर नहीं करना चाहिए। दृढ़ निश्चय करके बोले—मैं बाहर न्याय करता रहा हूँ। घरमें भी न्याय ही करूँगा। मैं सत्यपथसे डिग गया था, मगर अब भूल न होगी।

कहने तो यह शब्द कह दिए मगर स्त्रीका भोलाभाला मुख देखकर खयाल आया—निर्दयी! बेचारी स्त्रीका मन क्यों दुखी करता है? आप कष्ट उठा पर इस मोमकी पुतलीको दुख न पहुँचा। यह विचार एक क्षणमें आया और दृढ़ निश्चयको बहाकर ले गया। मुखपर मुस्कराहट आ गई, आँखें हँसने लगीं और उठकर बोले—लो मैं जाता हूँ, घण्टे भरमें वापस लौटूँगा, आज्ञा है?

लक्ष्मी आराम-कुर्सीपर बैठी हुई थी, पीठसे सहारा लगाकर शासककेसे ढंगसे बोली—आठ बजे हैं। नौ बजे वापस न आए तो जुर्माना होगा।

जसवन्तराय हँसते हँसते आगे बढ़े और हाथ जोड़कर बोले—हुजूर, पहुँच जाऊँगा। यह कहकर बाहर निकल गए और सोचने लगे, क्या करना चाहिए? कर्ज़ लिये बिना काम नहीं चलेगा। कितना समझाया, कितनी माथा-पच्ची की, मगर उसकी बुद्धिपर पत्थर पड़ गये हैं, एक नहीं मानती। आख़िर यह कर्ज़ क्यों लिया जाय? कन्याका ब्याह करना है या अपने सर्वनाशकी सामग्री इकट्ठी करनी है? सुख जायगा, दुख आयगा, घरकी शोभा घटेगी और तरह तरहके कष्टोंसे घर नरक-कुण्ड बन जायगा। और यह सब कुछ एक स्त्रीकी दो घड़ीकी प्रसन्नताकी खातिर होगा। यह बेहूदगी है, मुझे ऐसा नहीं करना चाहिए। यह कहकर वापस होनेको थे कि हृदयपर दूसरा चित्र अंकित होने लगा—लक्ष्मी वास्तवमें लक्ष्मी है, उसके न माता है न पिता है, न बहन है न भाई है। परमात्माने एक लड़का दिया था वह भी न जाने कहाँ गया और क्या हुआ? ले

देकर एक बेटी है, अब इसका विवाह भी उसकी मरज़ीसे न हुआ तो बेचारीका मन बुझ जायगा। उसने मेरे साथ गहनेके लिए कभी झगड़ा-झंझट नहीं किया, कभी कीमती कपड़ेके लिए हठ नहीं किया। पहली बार उसने मुझसे एक अभिलाषा प्रकट की है। अगर उसको भी पूरा न किया तो ग़रीब क्या कहेगी? उसे क्या कहना है? वह तो रो धोकर चुप हो रहेगी। क्या मेरा मन मुझे दिनरात धिक्कार न देता रहेगा?

इन्हीं विचारोंमें रायसाहब ताराचन्दकी कोठी आ गई। रायसाहब अमीर आदमी थे। लाखोंकी जायदाद थी। रुपया सूदपर दिया करते थे। लाला जसवन्तराय उनसे खुश न रहते थे, मगर इस भावको उन्होंने कभी प्रकट नहीं किया था। वह कचहरी आते जाते नित्य उनकी कोठीके आगेसे होकर जाते थे, मगर अन्दर जानेका कभी विचार नहीं हुआ। कई बार रायसाहबने उनको भोजका निमंत्रण भी दिया था मगर जसवन्तराय उनको किसी न किसी बहाने टाल दिया करते थे। पर स्वार्थ बुरा है, आज वही जसवन्तराय उन्हीं रायसाहबकी कोठीमें बिन बुलाये जा रहे थे। संसारकी यही गति है।

४

जसवन्तरायने चारों ओर दृष्टि दौड़ाई, मगर कोई ऐसा दिखाई न दिया जो इस संकटके समय काम आता और दस हज़ार रुपयेकी थैली उठा देता।

लाला सरनदास वकील रुपया दे सकता है और दे भी देगा, मगर अपमान नहीं सहा जा सकता। मेरे हुजूरमें हाज़िर होनेवाला और उसके सामने मेरे नेत्र झुक जाएँ, यह ठीक नहीं। चलो, रायसाहबसे लेनेमें क्या हानि है? उनसे कभी बिगाड़ नहीं हुआ। सूम तो अवश्य है पर ज़रूरत पूरी कर देगा। सूदमें मुझे कोई संकोच नहीं। हाँ बैङ्कसे क्यों न लूँ? पर नहीं, साधारण लोगोंमें बात उड़ जायगी। यही ठीक है,

रायसाहब सूद ज्यादा लेता है मगर बात बाहर नहीं निकालता। उसका पेट कूँआ है, जो बात अन्दर गई, बाहर नहीं निकलती।

यही सोचते सोचते रायसाहबके कमरेमें जा पहुँचे। बूढ़ा कंजूस मैला-सा कम्बल ओढ़े कागजपर झुका हुआ हिसाब-किताबमें लीन था। जसवन्तरायको कमरेमें आते देखकर खड़ा हो गया और बोला—आज तो हमारे बड़े भाग्य हैं। आपके दर्शन हो गये। आइए, विराजिए।

लाला जसवन्तराय मुस्कराते हुए बैठ गये और बोले—कहिए, अच्छे तो हैं? घरमें तो कुशल है?

रायसाहबने नाक सिकोड़कर उत्तर दिया—जी हाँ, सब कुशल है, आप कहिए?

"ईश्वरकी दया है।"

"कैसे दर्शन दिये?"

"मैं इसलिए हाजिर हुआ हूँ कि.....।" इससे आगे कुछ न कह सके। लज्जा ने मुंह बंदकर दिया। जबसे नौकर हुए थे किसीके आगे हाथ न पसारा था।

बूढ़ा बड़ा छलछन्दी था, सब बात समझ गया, मगर अनजान बनकर बोला—हाँ हाँ, आप रुक क्यों गये?

जसवन्तराय फिर साहस करके बोले—मैं इसलिए हाज़िर हुआ हूँ, कि मुझे कुछ.....

इससे आगे फिर कुछ न कह सके और आँखे नीचे झुक गईं। जो मुखमण्डल न्यायशीलता और सचाईसे सदा चमकता रहता था उस पर लज्जाके बादल दौड़ने लगे। जो सिर कभी किसीके आगे नहीं झुका था, वह इस समयपर एक सूम ब्याज खानेवालेके सामने झुकाहुआ था। इच्छा शब्दोंको जीभ तक लाती थी मगर लज्जा उन्हें वहीं रोक देती थी।

बूढ़ा ताराचन्द खाँसकर बोला—आप जो बात है, निःशंक होकर कहिए।

जसवन्तरायने हिम्मत करके सारा वाक्य कह डाला—मैं इसलिए हाज़िर हुआ हूँ कि मुझे दस हज़ार रुपयोंकी ज़रूरत है।

यह वाक्य मुंहसे निकालकर जसवन्तरायको ऐसा हर्ष हुआ, मानो कोई संग्राम जीत लिया हो। मगर दूसरे ही क्षण शरीर पसीना पसीना हो गया। जसवन्तराय फिर बोले—मैं सूद देनेको तैयार हूँ मगर अपनी बदनामीसे डरता हूँ, बात बाहर न निकलनी चाहिए। राय ताराचन्द सोचने लगा—आसामी तो खरी है, नुकसान का डर नहीं, परन्तु सूद थोड़ा मिलेगा।

इसी दस हज़ारके सूदसे तो मैं चार मकान बना सकता हूँ। यह कचहरीकी कुर्सीपर बैठनेवाला इतना सूद कब देगा? सूद न मिले कुछ लाभ तो हो। यह न्यायकी सेधपर चलनेवाला है। इससे ऐसी आशा रखना भी व्यर्थ है। फिर जिससे अपने आपको कुछ लाभ न हो उसे हम लाभ क्यों पहुँचायँ, इसलिए टालना ही ठीक है। यह सब ताराचन्दने बहुत जल्दी सोच लिया और हँसकर उत्तर दिया—दस हज़ार क्या, बीस हजार तक हाज़िर हैं।

"मुझे जल्दी चाहिए।"

"कब तक?"

"अभी।"

ताराचन्द सिर हिलाते हुए और दाढ़ीपर हाथ फेरते हुए बोला—यह तो मुश्किल है।

"कल सही।"

"कल भी नहीं।"

"लड़कीका ब्याह है, एक सप्ताह बीचमें है, सब समान तय्यार है, केवल रुपयोंकी ज़रूरत है।"

बूढ़ा रायसाहब हैरान होकर बोला—अच्छा?

"जी हाँ। मैं सूद जो आप मांगेंगे, दे दूँगा।"

"तब तो बात बड़ी बेढब है। रुपया तय्यार नहीं है। अच्छा आप किसीसे लेकर काम चलावें, मैं प्रबन्ध कर दूँगा। रही बात सूदकी सो माफ़ कीजिए, मुझे आपसे ऐसी आशा न थी कि आप मुझे इतना लोभी समझेंगे।" यह कह कर खाँसने लगा। खाँसी भी बड़ी चतुर थी, ठीक समय पर आती थी।

जसवन्तराय अवाक् रह गए। उनको सुपनेमें भी यह विचार न था कि ताराचन्दसे रुपया न मिलेगा। आदमी बुद्धिमान व दूरदर्शी थे, समझ गये कि रायसाबके पास है तो सही, मगर देना नहीं चाहते। चुपचाप वापस लौटे, परन्तु अभी दरवाज़ेसे बाहर न निकले थे कि एक और आदमीको राय ताराचन्दके कमरेकी ओर जाते देख कर ठिठक गये।

वह पण्डित रामदासका जुआरी-शराबी पुत्र था जो लाखोंकी जायदाद का नाश कर रहा था और हज़ारोंका माल कौड़ियोंके मोल बेच रहा था।

कहनेकी ज़रूरत नहीं, राय ताराचन्दके पास अब रुपया आ-गया था।

तीन हज़ार रुपयेका 'प्रोनोट' लिखवाकर दो हज़ार रुपया जब दे चुका तो ताराचन्द बोला—कहिए, मैं आपकी और क्या सेवा कर सकता हूँ?

वह "कृपा" कह कर बाहर निकल गया।

६

दूसरे दिन जसवन्तराय अभी सोकर उठे ही थे कि देखते क्या हैं, राय ताराचन्द सामने खड़ा है। उसका मुँह घबराया हुआ था और आँखोंसे निराशा झलक रही थी।

जसवन्तराय बोले—क्यों रायसाहब! क्या बात है?

"मैं बड़े संकटमें फँस गया हूँ, मैं कहींका न रहा।"

"बात क्या है?"

"मेरा पुत्र राधेश्याम थोड़े दिन हुए सिपाहियोंसे लड़ पड़ा था। आज उन्होंने बदला लेनेके लिए उस पर यह झूठा दोष लगाकर पकड़ लिया है कि वह अपने घरपर जूआ खिलवाया करता है। आप जानते हैं, इस अवस्थामें इस दोषका मुझपर कैसा असर पड़ेगा। मेरे वंशमें कभी किसीपर ऐसा कलङ्क नहीं लगा। 'हरे राम, हरे राम' यह कहकर बिलख बिलखकर रोने लगा। यद्यपि पिछली रात उसने जसवन्तरायसे बहुत बुरा बर्ताव किया था, परन्तु फिर भी जसवन्तराय एक वृद्ध मनुष्यको रोते देख पिघल गये और सहानुभूति प्रकट करते हुए बोले—आप विश्वास रक्खें, आपके साथ न्याय होगा।

बूढ़ा रईस टकटकी बाँधकर उनकी ओर देखने लगा और बोला—मेरा पुत्र छूट जायगा?

जसवन्तरायने उत्तर दिया—अगर निर्दोष है तो ज़रूर छूट जायगा।

"है तो वह बिलकुल निर्दोष, यह मेरा दृढ़ विश्वास है। वह मरता मर जायगा मगर ऐसा काम कभी नहीं करेगा।"

जसवन्तरायने उत्तर दिया—फिर आप चिन्ता क्यों करते हैं? उसपर आँच न आयगी।

ताराचन्द खींस कर बोला—जहाँ आपकी कृपा है वहाँ चिन्ता काहेकी है। बस मैं तो निश्चिन्त हो गया हूँ।

जसवन्तराय बोले—हाँ, आप निश्चिन्त रहें।

ताराचन्दने विदा होते समय कहा—रात आपने रुपयेके विषयमें कहा था। आपको निराश करके मुझे रात नींद नहीं आई। घरमें दस हज़ार ही था, आपकी भेंट है। यह कहकर हज़ार हज़ारके दस नोट उसने जसवन्तरायके आगे रख दिये।

जसवन्तरायकी आंखोंके आगेसे परदासा हट गया। अब उन्हें इस भेंटका अभिप्राय साफ दिखाई देने लगा। यह भेंट नहीं थी, रिश्वत थी।

वे कई दिनसे रुपयेके लिए चिन्तित हो रहे थे और सारी रात

उन्होंने आँख नहीं झपकाई थी। वही रुपया कागजोंके रूपमें उनके सामने पड़ा था और वे उसे तनिक लेखनीके हिलानेहीसे प्राप्त कर सकते थे। जो मन कठिनसे कठिन अवसरोंपर पर्वतके समान अचल रह चुका था वह चलायमान हो गया। सत्यपथपर चलनेवाले पग कुमार्गमें चलनेपर डगमगाने लगे। उन्होंने सोचा—सारी दुनिया धर्मसे ख़ाली है, फिर मुझे ही धर्मात्मा बननेकी क्या ज़रूरत है? जो झूठे, पापात्मा और नीच हैं उनके भाग्य-नक्षत्र चमक रहे हैं। एक मैं हूँ कि दिनभर धर्मका जाप करता रहता हूँ। सतयुगका समय चला गया, अब कलियुग है। अधर्मका रास्ता रोशन और धर्मका मार्ग अन्धेरा है। इतना समय न्याय करते रहे परन्तु कुछ दिन अन्यायका भी स्वाद चखना चाहिए। मामूली बात है। बेटीका विवाह धूमधामसे हो जायगा, नहीं तो सारे जगत्की धूल मेरे सिरपर उड़ेगी।

इस भावके साथ ही अन्धकारमें प्रकाशका परदा उठा, दूसरा भाव उत्पन्न हुआ।—जसवन्तराय! तुम्हारी न्यायशीलतापर धिक्कार है। सचाईकी परख सुखमें नहीं, विपत्ति के समय हुआ करती है। प्रतिष्ठा बनानेमें कई वर्ष लग जाते हैं, कलङ्क एक पलमें लग जाता है। जगतका ध्यान छोड़ और जगतके स्वामीका ध्यान कर। पापोंसे लिप्त प्रकाशकी अपेक्षा निष्पाप अन्धकार कहीं अच्छा है और राजकीय ठाटबाटकी अपेक्षा सुजनताकी ग़रीबी अधिक मीठी है। विपत्ति आती है और चली जाती है, वीर वही है जो विपत्तिमें धीर रहे और न्याय-सचाईका त्याग न करे।

जसवन्तराय यह सोच रहा था और ताराचन्द प्रसन्न हो रहा था कि जादू चल गया। उठ कर चलने लगा और बोला—आज्ञा है?

जसवन्तरायने कहा—यह नोट लेते जाइए।

ताराचन्दको ऐसी आशा नहीं थी, हैरान होकर बोला—क्यों?

"आपने मुझे जो समझा है मैं वह नहीं हूँ।"

"अर्थात्?"

"अर्थात् मैं रिश्वत खानेवाला नहीं हूँ। दुनिया जानती है कि मैंने अनर्थके धनको आज तक कभी स्पर्श भी नहीं किया और न मेरी लेखनीने कभी वह लिखा है जिसे मैं झूठ समझता हूँ।"

ताराचन्द बोला—यह तो क़र्ज़ है।

"क़र्ज़ होता तो रातको मिल जाता।"

"ताराचन्दने दोबारा वही शब्द कहे—मैं कहता हूँ, सचमुच क़र्ज़ है।"

जसवन्तराय इन शब्दोंको न सह सके, क्रोधसे कड़क कर बोले—क़र्ज़ कैसे है? क़र्ज़ होता तो सूद नियत किये बिना स्टाम्प लिखवाये बिना तुम दस हजारकी रकम मेरे आगे कैसे रख देते? क़र्ज़ होता तो अपने पुत्रकी सिफारिश किये बिना ही तुम मुझे रुपया रातको दे देते। इस रुपयेकी मुझे ज़रूरत नहीं। कृपा करके इन पापके रुपयोंको उठा लीजिए।

ताराचन्द चुप रह गया और धीरेसे नोट उठाकर बाहर निकल गया।

६

जसवन्तराय अन्दर गये, लक्ष्मी मुस्कराती हुई उनके सामने खड़ी हो गई और बोली—एक खुशख़बरी सुनाऊँ?

जसवन्तरायका हृदय धड़कने लगा, बोले—क्या?

प्रेमनाथ याद है?

जसवन्तराय बोले—क्या कोई अपने पुत्रको भी भूल सकता है?

"वह आ गया है।"

"कहाँ?"

"अन्दर है।"

जसवन्तरायका हृदय आनन्दसे उछलने लगा। दौड़ते हुए अन्दर गये और वर्षोंसे खोये हुए पुत्रको छातीसे लगाकर प्रेमके आँसू बहाने

लगे। लक्ष्मी सामने खड़ी थी और हँसती थी। जसवन्तरायने कहा—बेटा! इतने समय कहाँ रहे? प्रेमनाथने सिर झुकाकर उत्तर दिया—मैं सब बातें समय मिलनेपर आपसे कहूँगा।

लक्ष्मीने बात काटकर उत्तर दिया—अब तो मैं शीघ्र ही अपने बेटेका ब्याह कर देना चाहती हूँ। ख़ूबसूरत बहू अपने घर ले आऊँगी।

ठीक उसी समय नौकरने कहा—बाबूजी! थानेदार साहब बाहर खड़े, कुछ कहना चाहते हैं।

जसवन्तराय बाहर गए और आठ दस मिनिटके बाद आकर प्रेमनाथसे बोले—ज़रा बाहर आओ।

प्रेमनाथ जसवन्तरायके साथ बाहर गये और बाहर जाते ही थानेदार साहबने उनको हथकड़ी पहना दी।

जसवन्तराय रोते हुए अन्दर लौट आये।

एकाएक लक्ष्मी उनके सामने आकर खड़ी हो गई और क्रोधसे काँपते हुए स्वरसे बोली—यह क्या हो रहा है?

जसवन्तराय मुंहसे कुछ न बोल सके, उनकी अँगुलीने आकाशकी ओर इशारा किया।

लक्ष्मीने कहा—बात क्या है? बरसोंका खोया हुआ हीरा हाथ आया था और उसे थानेदार पकड़कर ले गया है। उसने क्या अपराध किया था?

जसन्तरायका मुंह अब खुल गया, जरा सँभल कर बोले—उस पर हत्या अपराध है।

"हत्याका अपराध?"

"हाँ।"

लक्ष्मीका सिर घूमने लगा। आखोंके सामने अन्धेरा छा गया। वह गिरनेको थी कि कुर्सी पकड़कर सँभली और साथ ही आरामकुर्सी पर बैठ गई। कुछ सोचकर बोली—थानेदार जानता था कि वह आपका बेटा है?

"नहीं।"

"आपने उसे बताया था ?"

"नहीं।"

"क्यों, बतानेमें क्या हर्ज़ था ?"

"मेरा मन यह नहीं मानता था।"

लक्ष्मीकी छातीमें मानों किसीने बाण मारा। उसने क्रोधसे व्याकुल सर्पिणीकी तरह सिर ऊँचा किया और बोली—न्याय इतना ही प्यारा है, पुत्रको फाँसी चढ़वाओगे ?

जसवन्तराय बोले—न्यायके आगे सब कुछ तुच्छ है।

लक्ष्मीको आशा न थी कि जसवन्तराय यह उत्तर देंगे। क्रोध छोड़कर उसने आँसुओंकी शरण ली और रोते हुए जसवन्तरायके चरणमें गिर कर कहा—परमात्माके लिए मेरे बच्चेको बचाओ।

जसवन्तराय बोले—लक्ष्मी।

"हाँ"

'तुम जानती हो, मैंने आजतक सदा न्याय किया है ?"

"हाँ।"

"और आज .."

"नहीं, परमात्माके लिए आज यह न्याय छोड़ दीजिए। जानते हो, मैं इस बच्चेके लिए कितने साल रोती रही थी। आप खुद इस बालकके लिए उदास थे। आज ही वह मिला था और अभी कोई बात भी न करने पाये थे कि आपने उसे पोलीसके हवाले कर दिया। मेरा दिल इस दुःखसे टुकड़े टुकड़े हो जायगा।"

जसवन्तरायके नेत्रोंसे आँसुओंकी अविरल धारा बहने लगी, वे भर्राये हुए स्वरमें बोले—लक्ष्मी, यह दुःख मुझसे भी नहीं सहा जायगा, मगर जो कुछ भी हो, मेरे पाँव सचाईसे कभी इधर उधर न होंगे। मैंने न्यायकी तुला हाथमें पकड़ी है और न्यायकी प्रतिज्ञा की है। उसे पूरा

करूँगा और जिस तरह भी हो सकेगा अपने आपको अन्यायके कलंकसे बचाऊँगा। इसके लिए पुत्र ही नहीं, अपना सिर भी देना पड़े तो परवाह नहीं।

लक्ष्मीने एक और बात सोची—सरकार तो सिरके बदले सिर माँगती है न ?

"हाँ सिरके बदले सिर।"

"तो मैं फाँसी पर चढ़नेको तैयार हूँ।"

जसवन्तरायने बनावटी हँसीसे कहा—कानून हत्यारेका सिर माँगता है, हत्यारेको माँका नहीं।

लक्ष्मी फिर रोने लगी और रोते रोते बोली—आपका हृदय क्यों पत्थर हो गया ? कोई इस तरह भी करता है ?

"हाँ मुन्सिफों (न्यायाधीशों) को ऐसा ही करना पड़ता है।"

लक्ष्मीको निश्चय हो गया कि पुत्रका मरना अवश्यंभावी है। उसकी आँखोंके आगे मृत्युका दृश्य फिर गया। वह बेहोश होकर गिर पड़ी।

७

जसवन्तरायने आकाशकी ओर देखकर कहा—परमात्मा मुझे बल दे कि इस कठिन परीक्षामें अचल रह सकूँ। वे प्यारी पत्नीके अचेत शरीरकी ओर झुकनेको थे कि नौकर अन्दर आया और बोला थानेदार साहब मिलनेके लिए आये हैं।

जसवन्तरायको थानेदार साहब पर अत्यन्त क्रोध था। एक प्रकारसे वे उसे ही अपने पुत्रका घातक समझ रहे थे। रुखाईसे बोले—जाकर कह दो, मुझे फुरसत नहीं। स्त्री बीमार है।

लक्ष्मीको सुधि आ गई। वह हाथ जोड़ कर बोली—

"परमात्माके लिए मेरे पुत्रके प्राण बचाओ।"

जसवन्तरायने उत्तर दिया—लक्ष्मी ! मुझे इस परीक्षामें फ़ेल करने की चेष्टा न करो ।

लक्ष्मीने क्रोधके साथ मुँह फेर लिया । नौकर फिर कमरेमें आया—महाराज ! वे कहते हैं, बड़ी भारी बात है । आपका मिलना ज़रूरी है ।

लक्ष्मीने कहा—कौन है ?

भृत्यने उत्तर दिया—थानेथार साहब आये हैं ।

लक्ष्मीने अधीर होकर कहा—उन्हें अब कह दीजिए । ज़रासा इशारा होते ही वे अपने प्रमाणोंको नष्ट भ्रष्ट कर सकते हैं ।

जसवन्तरायने अभिमानके साथ सिर ऊँचा किया, और बोले—मेरे मुँहसे यह बात कभी नहीं निकल सकती । यह कहकर वे थानेदार साहबसे मिलनेके लिए कमरेसे निकल गए ।

थानेदार साहब बैठे इंतज़ार कर रहे थे । वे बड़े भद्र पुरुष थे । न्यायकी सूचीमें जसवन्तरायके बाद उन्हींका नम्बर था । इसलिए दोनोंमें गहरी दोस्ती थी । जसवन्तराय उनको अपना भाई कहा करते थे और वे भी जसवन्तरायका बड़ा आदर करते थे । जो धर्म्मभेद था मगर उनके सम्बन्ध बहुत गहरे हो चुके थे । पुरुषोंमें तो मिलना मिलाना था ही, स्त्रियोंमें भी प्रीति थी । थानेदारकी पत्नी सप्ताहमें दो-तीन बार जसवन्तरायके घर आया करती थी । जसवन्तराय थानेदार साहबसे जब मिलते उन्हें 'मिस्टर कमर' कहकर पुकारा करते थे, 'थानेदार' कभी न कहते थे । कमरुद्दीन आज बड़े आश्चर्य्यमें आये, जब जसवन्तराय उनके निकट आकर बोले—फरमाइए थानेदार साहब ! क्या बात है ?

जवाब में कमरुद्दीन उनका मुँह तकने लगे ।

जसवन्तरायने इस पर कुछ ध्यान न दिया और अपने शब्दोंको फिर दोहराया—फरमाइए थानेदार साहब ! क्या बात है ?

कमरुद्दीन बोले—आप मुझे शरमिन्दा करते हैं ।

"नहीं, आप मतलबकी बात कहिए, कचहरीका समय हो रहा है ।"

"आज जो लड़का आपके यहाँ छिपा था और जिसपर क़त्लका इलज़ाम है वह कहता है—"

जसवन्तरायका दम घुटने लगा। वे अधीर हो उठे।

कमरुल्दीन रुक गए।

"क्या कहता है ?"

"कि मैं डिपुटी साहबका लड़का हूँ और वही हूँ, जो छः सात वर्षसे गुम हो गया था।"

जसवन्तरायके माथेपर पसीना आ गया। वे उसे रूमालसे पोंछते हुए बोले—तो ?

कमरुल्दीनने ज़मीनकी ओर देखते हुए पूछा—क्या यह ठीक है ?

जसवन्तराय उठकर खड़े हो गये और इधर उधर टहलते हुए बोले—मुझे तो इस बातका पता नहीं लगता कि इस बातका मुकदमें (अभियोग) के साथ सम्बन्ध ही क्या है ?

कमरुल्दीन समझ गए कि प्रेमनाथ सच कहता है। मगर साथ ही जसवन्तरायके धैर्य्य, दृढ़ता और सचाईकी अन्तिम सीमा देखकर उनका हृदय काँप उठा। कैसा मनोवेधक दृश्य था ! बेटा तलवारके नीचे सिर दिये हुए है और बाप सम्बन्ध तक प्रकट करनेमें पाप समझता है !

कमरुल्दीन साहस करके बोले—अगर यह सच है तो कोशिश की जायगी कि...

जसवन्तराय चुप न रह सके, बोले—शैतान...इससे आगे कुछ न कह सके और कमरेमें टहलने लगे। उनकी आँखोंसे आगकी चिनगारियाँ निकलने लगीं और वे मन ही मन कमरुल्दीनको कोसने लगे।

कमरुल्दीनने जसवन्तरायसे कभी सख़्त शब्द न सुना था। नम्रतासे बोले—भाईसाहब, यह आप क्या कहते हैं ? मैं कमर हूँ।

"तुम शैतान हो, लोगोंको पापका सबक़ पढ़ाते हो।"

कमरुल्दीन चुप हो गये और भूमिकी ओर देखने लगे। उसी समय कमरेका दरवाज़ा खुला और लक्ष्मी नंगे मुँह कमरुल्दीनके सामने आकर खड़ी हो गई।

वह पुराने ढंगकी स्त्री थी, परदेमें रहती थी, और कभी बाहर न निकली थी। निकलती तो बन्द गाड़ी फाटकपर आ जाती। जो स्त्रियाँ परदा करती हैं वे साधारण लोगोंसे परदा करें या न करें, मगर पतिके यार-मित्रोंके सामने कभी नहीं होतीं। यही विचार लक्ष्मीका था। वह जसवन्तरायके मित्रोंकी तो छाया देखकर भी छुप जाती थी। एक बार जसवन्तरायने बहुत आग्रह किया कि मेरे बड़े भाईसे परदा न किया करो। इसी बातपर वे दो दिन नाराज़ रहे। मगर लक्ष्मीने परदा दूर करना स्वीकार न किया।

आज वही लक्ष्मी बावली होकर नंगे मुँह कमरुल्दीनके सामने खड़ी कह रही थी—थानेदार साहब! मैं आपके सामने अञ्चल पसारती हूँ, क्या मेरी झोलीमें भीख न डालोगे?

कमरुल्दीनने सादर उत्तर दिया—मेरी बहनका जो हुक्म होगा, बजा लानेमें कभी उज़र न होगा।

"आज सवेरे जिस बालकको आपने पकड़ा है वह मेरा बेटा है।"

इस समय तक जसवन्तराय चुप खड़े थे, अब चुप न रह सके। चिल्लाकर बोले—तुम मेरे नामपर कलङ्क लगानेवाली कौन हो? जिसको मैंने वर्षोंमें प्राप्त किया तुम उसे मिनटोंमें मिट्टीमें मिला देना चाहती हो? कृपा करके अन्दर चली जाओ।

लक्ष्मीने आजतक पतिकी आज्ञा उल्लङ्घन नहीं की थी, मगर इस समय पुत्रके स्नेहमें वह अन्धी हो रही थी। गरजकर बोली—तुम मुझे आज्ञा देनेवाले कौन हो?

जसवन्तराय आश्चर्यसे बोले—तू बावली तो नहीं हो गई?

"हाँ बावली हो गई हूँ।"

"तब मुझे जबरदस्ती करनी पड़ेगी" यह कहकर लक्ष्मीको खेंचकर अन्दर ले गये और एक कमरेमें बंद करके लौट आये। कमरुल्दीन अभी तक बैठे हुए थे, वे उनसे बोले—सुनो थानेदार साहब, आप थानेदार हैं। आपका काम इन्साफ़ करना है और इन्साफ़ यह नहीं देखता कि अपराधी किसका सम्बन्धी है और कौन है, वरन् उस अपराधका कारण क्या है, और वास्तवमें अपराध उससे हुआ है या नहीं। प्रेमनाथ मेरा बेटा है। अगर उसने हत्या की है तो मैं उसके बचावकी सिफ़ारिश न करता हूँ न करूँगा। आपसे भी मेरी यही प्रार्थना है कि आपने आज तक न्याय किया है भविष्यमें भी इस उद्देश्यको आँखोंसे ओझल न होने दो। मेरी स्त्रीने जो कुछ कहा है उसपर ज़रा भी ध्यान न दो। वह इस समय पागल हो रही है।

कमरुल्दीनकी आँखोंमें आँसू भर आये। संसारमें न्यायका नाम लेनेवाले बहुत हैं, न्याय करनेके पक्षपाती असंख्य हैं मगर कितने हैं जो परीक्षामें पूरे भी उतरते हैं, जो समय पर साहस नहीं हारते, जो विपत्तिके समय आदर्शसे पतित नहीं होते? ऐसे सच्चे वीर कितने हैं? वे खड़े होकर बोले—आप मुबारक हैं।

जसवन्तरायने जवाब दिया—ईश्वर मुझे इस परीक्षामें पूरा उतरनेका बल दे।

८

राधेश्यामका मुक़दमा जसवन्तरायकी अदालतमें पेश हुआ। राय ताराचन्दको निश्चय हो गया कि अब छुटकारा मुश्किल है। और किसी डिपटीके यहाँ होता तो बचावका उपाय हो सकता था, मगर एक तो जसवन्तराय सख़्त स्वभावका आदमी, और फिर इसपर अनबन हो चुकी थी। कोई आशा दिखाई न दी। नाव टूटी हुई हो, जलका प्रवाह वेगमें हो, कर्णधार विरुद्ध हो, तो बचावकी क्या आशा हो सकती है? विचार

किया, मुक़दमा दूसरी अदालतमें बदला लें, मगर फिर सोचा, पोलिसने झूठी बात बनाई है। देखें न्याय होता है या नहीं। जसवन्तराय ऐसे मुक़दमोंमें दूधका दूध पानीका पानी करनेके लिए मशहूर हैं। मेरी और उनकी छिड़ी हुई है। देखें यह आदमी दुश्मनकी झोलीमें भी न्यायकी भिक्षा डालता है या नहीं।

मुक़दमेकी जाँच होने लगी और वकील लोग पेशियाँ भुगतने लगे। वादीके प्रमाण प्रबल थे, मगर झूठे। साक्षियोंको सिखा-पढ़ाकर दृढ़ कर रक्खा था, मगर जसवन्तरायके शुद्ध तेजने उनको सचाईकी ओर झुका दिया। साक्षियोंने वादीके विरुद्ध सच सच प्रकट कर दिया, मगर उनकी कर्मोंको पूरा करनेके लिए वकीलने अभियुक्तके विरुद्ध ऐसी प्रमाण और युक्तियोंसे पूर्ण वक्तृता दी कि लोग दंग हो गए। उनको निश्चय हो गया कि राधेश्यामका बचना असम्भव हो गया है। मगर जसवन्तराय समझ गए थे कि सचाई क्या है, और न्याय किसके पक्षमें है। उन्होंने फ़ैसला लिखना आरम्भ किया और उठकर सुना दिया—प्रमाण कमज़ोर हैं; अपराधी बरी।

उधर प्रेमनाथको १४ वर्ष कालेपानीकी सज़ा मिली।

राय ताराचन्दको यह आशा न थी, मगर जिस आदमीने न्यायके लिए अपने पुत्रको न छोड़ा था, यह क्योंकर हो सकता था कि वह मनोगत भावसे सचाईके मार्गसे डगमगा जाता।

जिस दिन फैसला हुआ उसी दिन राय ताराचन्द उनके यहाँ गया और कहने लगा—आप आदमी नहीं देवता हैं।

जसवन्तरायने धीरतासे दिया—मैंने इस समय तक न्यायको हाथसे जाने नहीं दिया। परमात्मा बल दें कि इस परीक्षाके लम्बे समयमें मेरे धैर्यका पग सन्मार्गसे न डोले।

ताराचन्द बोला—आपने रुपयोंकी ज़रूरत ज़ाहिर की थी। मुझे शोक है, मैंने उस समय 'न' कर दी। अब जिस समय कहें आपकी सेवामें भेजदूँ।

जसवन्तरायने जवाब दिया—जो आदमी न्यायके लिए पुत्रको बलिदान कर सकता है वह सिद्धान्त या आदर्शके लिए झूठी बदनामी भी सह सकता है। मेरे पास जो कुछ है उसीसे ब्याह कर दूँगा। ऋण लेनेकी अब इच्छा नहीं रही और वैसे भी अभी शोकके कारण ब्याह जल्दी नहीं होगा।

राय ताराचन्द यह सुनकर चुपचाप चला गया।

लक्ष्मी चिकके अन्दरसे यह सब बातें सुन रही थी। वह ताराचन्दके चले जानेपर आकर जसवन्तरायके गले से लग गई और बोली—क्षमा करो, मैंने आपको आजतक नहीं समझा था। अब आँखोंसे परदा हट गया है। अब मैंने आपको सच्चे रूपमें देख लिया है। मैं मूर्ख थी, अब आइंदा कोई भूल न होगी। पुत्रको १४ वर्षके लिए देकर और पुत्री का ब्याह अपनी स्थितिके अनुसार करके भी मुझे अभिमान रहेगा कि मैंने आप जैसा साफ़, सीधा, खरा पति पाया है।

जसवन्तरायने भर्राये हुए स्वरसे जवाब दिया—लक्ष्मी, यह चोट बड़ी सख्त है और समय बहुत लम्बा है। अगर तुम मेरी सहायता न करोगी तो धैर्य्य रहना असम्भव है।

लक्ष्मी बोली—अगर समय घड़ीकी सुइयोंके अधीन होता तो मैं १४ वर्ष एक मिनटमें गुज़ार देती, मगर ऐसा न हुआ है न होगा। इसलिए परमात्मापर भरोसा करो और मनको सँभालो। घबरानेसे आन जाती रहेगी।

भलाईका बदला

१

रात ठंडी और अन्धेरी थी। कोई बारह बजेका समय होगा। पढ़ते पढ़ते मेरा मन ऊब गया और मैंने कम्बल सँभालकर नौकरको आवाज़ दी—शम्भू।

शम्भू आँखें मलता हुआ आया और बोला—पानी चाहिए?

"नहीं, बूट लाओ।"

"इस वक्त?"

"हाँ, इस वक्त।"

"क्यों?"

"ज़रा घूम आनेका इरादा है। ज़्यादा पढ़नेके कारण मन घबरा रहा है। जब तक सिरको ठंडी हवा न लगेगी, तब तक नींद न आएगी।"

शम्भू हमारा पिता पुरखी नौकर था, बड़ा भक्त, और साधुस्वभाव।

माता-पिताकी मौत के बाद वही मेरी चौकसी किया करता था और ख़ूब सावधान रहा करता था। रातके समय मुझे अकेले बाहर जाता देखकर डर सा गया—मगर चुपचाप साथके कमरेसे बूट लाकर पहनाने लगा। मैंने कहा—मैं जल्द लौट आऊँगा।

मालूम होता है मेरी बातसे उसे सन्तोष न हुआ, मेरी तरफ़ देख कर बोला—मैं भी साथ चलता हूँ। रातका समय है, अकेले बाहर जाना ख़तरेसे खाली नहीं।

मैंने कहा—तुम क्यों डरते हो? जानते नहीं, मुझे रातके समय बाहर घूमनेकी आदत है।

तस्मा बाँधते बाँधते शम्भूने एक बार फिर मेरी तरफ़ देखकर कहा—यह ठीक है, मगर आज रात बहुत जा चुकी है।

"कोई बात नहीं, मैं लगभग एक घण्टेमें लौट आऊँगा। तुम इसी कमरेमें लेटो, मेरे वापस आने पर अपने कमरेमें चले जाना।"

शम्भूने सिर झुका कर जवाब दिया—बहुत अच्छा। मैंने लाठी हाथमें लेकर फाटक खोला और बाहर निकल कर देखा, चारों ओर मरघटके समान निस्तब्धता थी और पग पग पर भयानक सन्नाटा छाया हुआ था।

मैं बचपन ही से निडर था, बेपरवाहीसे सड़कपर घूमने लगा। ठण्डी हवा लगनेसे ऐसा मालूम हुआ मानो किसीने सिरपर बरफ़की डली रख दी हो।

सड़कके दोनों तरफ़ लैम्पोंकी कतार बड़ी सुहावनी मालूम होती थी। मैं टिकटिकी बाँधकर उनकी तरफ़ देखने लगा और सोचने लगा अगर अँधेरी रातमें प्रकाश न हो तो रातका दृश्य कैसा भयानक हो जाय। इतनेमें मैंने सुना, जैसे किसीने कहा हो—"बाबू!"

मैंने लैम्पोंसे आँखें हटाकर जिधरसे वह आवाज आई थी, उधर

देखा घासपर एक छोटीसी पाँच छः सालकी लड़की बैठी सरदीसे ठिठुर रही थी और मेरी ओर देख कर कह रही थी—बाबू ! मैंने उसे उठाकर चादरसे ढाँप लिया। लड़कीने अपना सिर मेरे कंधेपर रख दिया और रोने लगी। मैंने उसे प्यार किया और पूछा—

"तुम्हें बहुत सरदी लग रही थी ?"

लड़कीने कहा —हाँ !

और वह बड़े ज़ोरसे मेरी छातीसे चिमट गई। ऐसा मालूम होता था कि उसे ख़याल है मैं उसे छोड़ कर चला जाऊँगा। मैंने उसे फिर प्यार किया और विश्वास दिलाया कि मैं तुम्हें यहाँ छोड़कर नहीं जाऊँगा। यह सुनकर उसे सन्तोष हुआ और वह मेरे मुँहके पास मुँह लाकर बोली—अच्छा।

यह लड़की शकल-सूरत और लिबाससे किसी अमीर घरानेकी मालूम होती थी। उसके बाल सुनहले थे, आँखें बड़ी बड़ी थी, मुँह गोल और रंग गोरा था। उसके बालोंमें रेशमी फ़ीता बँधा हुआ था और पाँवमें सुन्दर छोटा-सा रबड़का बूट पड़ा हुआ था। हाथोंमें हाथी दाँतकी सफेद चूड़ियाँ थी और गलेमें हलके रंगका गुलाबी मफ़लर लिपटा हुआ था। मैंने सोचा कि इसे किसी पोलीसमैनके हाथ दे दूँ तो वह इसे इसके घर पहुँचा देगा। मगर जब मैंने यह विचार उस छोटी सुन्दरीपर ज़ाहिर किया तो वह भयसे काँपने लगी और कहने लगी—मुझे सिपाहीसे डर लगता है। माँ कहती है कि वे बच्चोंको मारते हैं।

मैंने कहा—वह तुझे तेरे घर पहुँचा देगा।

लड़की—नहीं, वह मुझे मारेगा।

मैं—कौन कहता है ?

लड़की—माँ कहती है।

मैं चुप हो गया। मा-बाप बालकोंको डरानेके लिए सिपाहियोंकी

बहुत मदद लिया करते हैं। इसीलिये लड़की सिपाहीका नाम सुनते ही डर गई थी।

मैंने पूछा—तुम्हारा घर कहाँ है ?

लड़की एक क्षणके लिए मेरी ओर देखती रही, फिर धीरेसे बोली—सड़कपर।

मैं—उसका नाम क्या है ?

लड़की—मुझे नहीं मालूम।

मैं—तुम्हारे बापका नाम क्या है ?

लड़की—मुझे नहीं मालूम।

मैं—वह कहाँ रहता है ?

लड़की—दफ़्तर।

मैं चुप हो गया। लड़कीने अपना सिर फिर मेरे कंधेपर रख दिया और धीरे धीरे मेरे मुँहपर हाथ फेरने लगी। थोड़ी देर बाद वह सो गई।

मैंने सोचा, इसे अपने घर क्यों न ले चलूँ ? कल उठ कर इसके घरका पता आसानीसे लग जायगा। यह सोचकर मैं अपने घरकी तरफ़ मुड़ा। शम्भू अभी तक जाग रहा था, मैंने सब हाल उसे सुनाकर कहा—इस वक़्त इसे आरामसे सुला दो। कल इसका घर ढूँढ़ लेंगे।

शम्भू लड़कीको लेकर चला गया।

२

दूसरे दिन मैं देर से सैर करने गया, देरसे सैर करके लौटा। उस वक़्त वह लड़की मेजपर बैठी मेरी राह देख रही थी। मुझे देखते ही कूद कर मेजसे नीचे उतर आई और दौड़कर मेरी टाँगोंसे चिमट गई, और बोली—"मुझे बड़ी भूख लगी है।"

मैंने उसे उठा कर गलेसे लगा लिया और पूछा—क्या तुमने अभी तक रोटी खाई नहीं ?

लड़की—नहीं मैं अपने बाबूजीके साथ खाया करती हूँ, आज तुम्हारे साथ खाऊँगी।

मैंने देखा, लड़की उम्रमें छोटी है अक्लमें छोटी नहीं है। उसने अपनी अँगुली मुँहमें डाल ली और बालेपनकी अटकन-मटकनसे खेलने लगी।

शम्भूने भोजन सामने रख दिया और मैं उसे गोदमें बैठाकर बड़े आनन्दसे खाने लगा। एकाएक उसने उठकर मेरी टोपीपर हाथ रख दिया और पूछा—तुम्हारा नाम क्या है ?

यह सवाल इससे बहुत पहले मुझे करना चाहिए था। इसलिए मैं बहुत शरमिंदा हुआ। चेहरा लाल हो गया, मुँहसे जवाब न निकला। लड़कीने फिर पूछा—तुम्हारा नाम क्या है ? मैंने हँसकर कहा—तुम बताओ तुम्हारा नाम क्या है ?

लड़कीने शर्मसे मुँह नीचे कर लिया और कहा—मेरा नाम ब्रज-बालादेवी है।

मैं—ब्रजबालादेवी या ब्रजबाला ?

लड़की—ब्रजबाला नहीं; ब्रजबालादेवी कहो। माँ कहती थी, तुम्हें कोई ब्रजबालादेवी कहे, तब बोला करो। देबो भी मुझे ब्रजबाला-देवी कहा करता है।

मैं समझ तो गया, देबो इसका भाई होगा, मगर फिर भी मैंने उससे पूछा—देबो कौन है ?

वह मेरी ओर देखते देखते खिलखिला कर हँस पड़ी और बोली—तुम्हें नहीं पता ? वह मेरा भाई है। उसे अभी बोलना नहीं आता। वह रोटीको लोती कहा करता है।

इस समय तक भोजन समाप्त हो चुका था और शम्भू मेरे हाथ धुला रहा था।

मैंने कहा—अपने घर जाओगी ?

वह आनन्दसे उछल पड़ी और बोली—चलूँगी।

मैंने घरसे निकलनेको चिक उठाई। बाबू रामचन्दसे मुझे ज़रूरी काम था, इसलिये मैंने पहले उधरसे निबटनेका विचार किया। लड़कीने समझा, मैं उसके घर जा रहा हूँ इसलिये उसने मुझे हाथसे ठहरनेका इशारा किया और बड़ी सुघराईसे हाथ धोने लगी।

हाथ धोकर, वह मेरे पास आ गई और रूमालसे मुँह पोंछकर बोली—चलो।

मैंने कहा—तुम ज़रा ठहरो, मैं गाड़ी ले आऊँ। गाड़ीमें चढ़कर चलेंगे।

लड़की—अच्छा ! पर जल्दी आना।

बाबू रामचन्दसे मुझे बहुत मामूली काम था, इसलिए मैं जल्दी ही वापस आ गया और साथ ही गाड़ी भी लेता आया।

शम्भूने मुझे देखते ही खुशीसे कहा—इस लड़कीके घरका पता लग गया।

मैंने पूछा—कैसे ?

शम्भू—इसके फ्राकके अन्दरसे यह कागज मिला है और उसने मेरे हाथमें वह काग़ज़का टुकड़ा रख दिया जिसपर लिखा था—

13 Temple Row

मेरे मनका बोझ हलका हो गया। मैंने उसी समय कैश बक्ससे कुछ रुपये लिये और उसे साथ लेकर गाड़ीमें बैठ गया।

३

पता पूरा और साफ था इसलिए भटकनेकी नौबत न आई। लड़कीने दूरहीसे अपना घर पहचान लिया और खुशीसे तालियाँ बजा बजाकर बोली—वह घर आ गया, वह घर आ गया। यह कहकर

उसने उँगलीके इशारेसे मुझे अपनी कोठी दिखाई।

कोठी शानदार थी। उसके चारों ओर बाग था। मैं देखते ही समझ गया कि यह किसी बैरिस्टरकी कोठी है और ब्रजबाला उसकी बेटी है।

जो ब्रजबालाको मैंने हर तरहका सुख पहुँचानेका पूरा पूरा यत्न किया था, मगर अब उसके बापकी कोठी देखकर मेरे मनमें भावना हुई कि मुझे उसकी इससे ज़्यादा खातिर करनी चाहिये थी।

गाड़ी रुक गई और मैं उसको लेकर नीचे उतरा। गाड़ीवालेको ठहरनेका इशारा करके मैं लड़कीके पीछे पीछे चला जो मेरे आगे आगे चलकर मुझे अपने घरका रास्ता दिखा रही थी, और साथ ही कहती जाती थी—इस तरफ आओ।

आँगनमें एक स्त्री खड़ी थी जिसके मुखपर व्याकुलता और चिन्ताकी रेखा झलक रही थी। लड़की पर नज़र पड़ते ही वह दौड़कर आई और "मेरी बच्ची, मेरी बच्ची" कहते हुए उसने कन्याको उठाकर गलेसे लगा लिया। ब्रजबालाने माँके गलेमें छोटी छोटी बाहें डालकर कहा—माँ, मैं आ गई। मैं आ गई।

वह स्त्री चुपचाप आँसू बहाने लगी और अपनी सुन्दर कन्याका बारबार मुँह चूमने लगी। इस मातृ-वात्सल्यका दृश्य देखकर मेरा शरीर पुलकित हो गया।

ब्रजबाला माँको पाकर एक क्षणके लिए मुझे भूल गई। एकाएक माँकी गोदसे नीचे उतर आई और मेरी ओर इशारा करके बोली—माँ, रातको मैं इस बाबूके घरमें रही थी। यह बड़ा अच्छा आदमी है।

स्त्री सिर झुकाये हुए मेरे निकट आई और कातर दृष्टिसे बोली—बेटा, तुम्हें मैं क्या आसीस दूँ, मेरा रोम रोम तुम्हें आसीस दे रहा है। ये वियोगके घण्टे हमारे लिए अत्यन्त व्याकुलताके घण्टे थे। आओ। अन्दर चलो। तुमसे मिलकर वे बड़े ख़ुश होंगे।

मैंने कहा—जो कुछ मैंने किया, वह मेरा धर्म था। अब आज्ञा दो, परीक्षाके दिन निकट हैं। रविवारका दिन था, वह तो गया, अब रात को कुछ पढ़ लूँ विचार है।

उसने कहा—तुम भले लड़के हो, परमात्मा तुम्हें पास कर देगा। मगर ज़रा अन्दर तो चलो।

मैं चुपचाप साथ हो लिया। ब्रजबाला हमसे पहले ही अपने बापके पास पहुँच चुकी थी और उन्हें हमारे आनेकी सूचना दे चुकी थी। वे बड़ी उत्कण्ठासे बाहर आये और मुझे गलेसे लगाकर बोले—तुमने हमें बचा लिया है।

मैंने आँखें झुका लीं और धीरेसे कहा—यह तो मेरा धर्म था। ऐसी भोली-भाली बिटियाको देखकर हठात् हृदय स्नेहसे उमड़ने लगता है और सहायताको जी चाहता है।

उसी वक्त पतिने पत्नीको कुछ इशारा किया और ब्रजबाला आकर मेरी टाँगोंसे चिमटकर बोली—बाबू।

मैंने उसे गोदमें उठा लिया और कहा—तुम्हारा घर आ गया।

ब्रजबालाने पहले मेरी तरफ़ देखा, फिर माथे परसे बिखरे हुए बालोंको पीछे हटाकर कहा—घर तो नहीं आया, हम घरमें आगए हैं।

यह सुनकर सब हँस पड़े। मैंने कहा—आखिर बैरिस्टरकी लड़की है।

लालचन्दने मेरा हाथ पकड़ लिया। और कहा—आओ, अन्दर चलो।

मैं इनकार न कर सका, साथ हो लिया। उस समय मेरे मनमें मान और प्रसन्नताकी लहरें उठ रही थीं। बिछुड़ोंका मिलाप कराना परम धर्म्म है, इसीसे सुख मिलता है और इसीसे यश होता है।

मैंने देखा, माता पिता ब्रजबालाके वियोगमें तड़प रहे थे और यद्यपि

इस समय उनकी बेटी मिल चुकी थी फिर भी उनकी व्याकुलता और घबराहटमें बहुत थोड़ा अन्तर आया था। वे बारम्बार एक दूसरेकी तरफ़ देखते थे और फिर मेरी ओर देख लेते थे। मगर मैंने उसपर ज़रा भी ध्यान न दिया।

अन्दर चलकर उन्होंने मेरा बहुत आदर-सत्कार किया। बात-चीत करते करते जब साँझ हो गई, तो मुझे चलनेका ख्याल आया।

मैंने कहा—अब आज्ञा दीजिए।

वह—आज रात नहीं।

मैं—मगर—

वह—अगर मगर नहीं। कल चले जाना।

मैंने बहुत आग्रह किया, मगर लालचन्द और उनकी पत्नीने मेरी एक न चलने दी। आख़िर उन्होंने मुझे रात वहीं ठहरनेपर सहमत कर लिया। मैंने भी कहा—चलो, कल चले जाएँगे।

खाना बहुत अच्छा बना था, और उससे यह बात जाहिर होती थी कि वह कितने अमीर और खुशहाल हैं। मुझे एक एक चीज़ कहकर खिलाते थे। एक एक चीज़के लिए अनुरोध करते थे, जैसे मैं उनका पुराना मित्र हूँ। खानेके बाद बातें शुरू हुईं, और ग्यारह बजे तक होती रहीं। तब मैंने अंगड़ाई लेकर कहा—अब तो नींद आगई।

लालचन्दने नौकरको पुकारा और कहा—स्नानागारके आगे जो तीसरा कमरा है उसमें बिछौना कर दे।

ब्रजबाला अभी तक जागती थी। नौकरसे बोली—शंकर, सफेद चादर बिछाना।

लालचन्द हँस कर बोले—देखो लड़की बार बार तुम्हारी सिफारशें कर रही है।

मैंने इसपर ध्यान न देकर नौकरको इशारा किया कि कह दो—सफ़ेद चादर नहीं है, मैली चादर बिछाऊँगा। नौकर मेरी बात समझ

गया और बोला—मगर सफ़ेद चादर तो कोई नहीं है। मैली चादर है, वही बिछाऊँगा। और क्या करूँ ?

ब्रजबालाने जल्दीसे कहा—मेरी ले लो।

नौकर—वह छोटी है।

ब्रज०—बाबूजीकी ला दो।

बाबू लालचन्दने कहा—बाबूजीकी क्यों ला दो ?

ब्रजबाला अधीर हो उठी और पिताके पास जाकर मिन्नतसे बोली—इनको सफेद चादर बिछवा दो।

यह देखकर पिताने पुत्रीको प्यारसे गोदमें उठा लिया और मुँह चूम कर कहा—अच्छा।

यह सुनकर ब्रजबाला नौकरके साथ उस कमरेमें गई जहाँ मेरे सोनेका प्रबन्ध था। थोड़ी देर बाद ब्रजबाला हाँपती हुई आई और कहने लगी—वहाँ हमारी वह राजी उस कमरेमें × × ×

मगर अभी उसकी यह बात समाप्त न होने पाई थी कि उसकी माँने उठकर उसे पकड़ लिया, और कहा—ब्रजबाला, तू बड़ी नटखट हो गई है। अभी तक तुझे नींद नहीं आई ? चल आरामसे सो जा। चल। नौकरने आकर कहा—बाबूजी बिछौना तैयार है।

मैं सोनेके कमरेमें जाकर पलङ्गपर लेट गया और लेटते ही मुझे झपकी आ गई। मगर दो बजेके लग-भग जब ज़रा आँख खुली, तो तबीयत खराब मालूम हुई। मैंने बाहर निकलकर ठण्डे वायुमें थोड़ा घूमनेका विचार किया मगर बाहर जाने लगा तो पता लगा कि बाहरसे किवाड़ बन्द किया हुआ है। मुझे संदेह हुआ कि यह कोई चाल तो नहीं है। मेरे साथ यह लोग कोई धोखा तो नहीं कर रहे हैं ?

अब मुझे एक एक बातमें संदेह होने लगा। पति-पत्नीकी घबराहट—मुझे देखकर इशारे—मुझे रात वहाँ रखनेकी कोशिश—और अब बाहरसे ताला बन्द—

मैं कमरेमें टहलने लगा। एकाएक मुझे जान पड़ा जैसे किसी चीज़की बदबू-सी आ रही है।—यह क्या हो सकता है ?

बिजलीकी तेज़ रोशनीमें मैंने कोना कोना देखा, मगर कुछ पता न लगा। खिड़कियोंके निकट जाकर देखा कि कहीं बाहरसे तो बदबू नहीं आती, मगर ऐसा भी न था।

उस कमरेके साथ लगता एक और कमरा था। जब मैं उस कमरेके निकट पहुँचा तो बू ज़्यादा मालूम हुई। मैं समझ गया—जो कुछ है इसके अन्दर ही है। दरवाज़ा बन्द न था, खुला था। मेरे हाथ लगाते ही खुल गया। ज्यों ही मेरी दृष्टि अन्दर पड़ी, मेरे आश्चर्य और भयकी हद न रही। वहाँ एक नौजवान स्त्रीकी लाश पड़ी हुई थी और पास ही पिस्तौल रखा था !

मेरी आँखोंके आगेसे परदा हट गया। अब मुझे साफ़ दिखाई देने लगा कि मेरे साथ छल किया गया है। मुझे हत्याका मुजरिम बनाया गया है। मेरे मनमें रह रह कर सवाल उठता था कि क्या भलाईका यही बदला है ?

मुझे उस समय समझ आई कि पति-पत्नीके मुँहका रंग क्यों उड़ा हुआ था ? वे इशारेसे बातें क्यों करते थे ? उन्होंने रात-भर मुझे ठहरनेका आग्रह क्यों किया था ? मुझे उस समय पता लगा कि व्रजबाला क्या कहने आई थी और उसकी माँ उसे उठकर क्यों सुलानेके लिए ले गई ?

दूसरे दिन पोलीस इन्स्पेक्टरने आकर मेरे हाथोंमें हथकड़ियाँ डाल दीं और कहा—आइए, ताँगा तय्यार है।

५

इलज़ाम यह था कि मैंने क़त्ल किया। ज़बरदस्त प्रमाण और आँखों देखे गवाह पेश किए गए। सरकारी वकीलकी टीका-टिप्पणियोंसे

तो मेरी बुद्धि चकरा गई, और मुझे निश्चय हो गया कि अब मैं न बच सकूँगा।

शम्भूने तार द्वारा मेरे चचाको बुला भेजा था और वे आकर पूरे तौरसे मेरे बचावका यत्न कर रहे थे, मगर बचावकी कोई सूरत नज़र न आती थी।

आखिर मेरी ओरसे गवाह पेश होनेका अवसर आया। शम्भूने मेरे वकीलको सब कुछ बता दिया था। उसने सबसे पहले ब्रजबालाको तलब किया।

ब्रजबालाके कचहरीमें आते ही लालचन्दकी बोलती बंद हो गई। वे इस समय तक गवाहोंमेंसे एक थे; मगर अब ऐसा जान पड़ा, मानो सारा अपराध उन्हींका है।

मेरे वकीलने लड़कीसे पूछा—तुम्हारा नाम क्या है?

ब्रज०—ब्रजबालादेवी।

वकील—तुम्हारा बाप कौन है?

ब्रजबालाने लालचन्दकी ओर इशारा किया। वकीलने मेरी ओर हाथ उठाकर कहा—यह कौन है?

ब्रजबालाने मुझे देखा और झपटकर मेरी ओर आना चाहा, पर जब उसे रोका गया तो वह मुझसे कहने लगी—मुझे ले लो।

वकीलने कहा—ले लेंगे, पहले मेरी बातका जवाब दो।

ब्रजबालाने अधीर होकर कहा—पूछिए।

"यह कौन है?" यह कहकर वकीलने मेरी ओर इशारा किया।

ब्रज०—यह बाबू हैं।

वकील—यह तुम्हारे घर गए थे और तुम्हें साथ लेकर गए थे?

ब्रज०—हाँ गए थे।

वकील—और रातको वहीं सोए थे?

ब्रज०—हाँ वहीं सोए थे।

वकील—अच्छा, जब तुमने बाबूके लिए चादर बिछवाई थी, तो तुमने कमरेमें क्या देखा था ?

ब्रजबालाने लालचन्दकी ओर इशारा करके कहा—बाबूजी मारेंगे।

वकीलने कहा—कोई नहीं मारता। सच सच बताओ। फिर तुमको यह बाबू गोदीमें ले लेंगे।

ब्रजबालाने कहा—उस कमरेमें राजी लेटी हुई थी। मैंने उसे बुलाया, पर वह न बोली।

वकील—उसके पास भी कुछ पड़ा हुआ था ?

ब्रज०—हाँ लोहेका कुछ पड़ा हुआ था।

वकील—क्या था ?

ब्रज०—कुछ था।

वकीलने ब्रजबालाको पिस्तौल दिखाकर कहा—वह चीज़ इस तरह-की थी ?

ब्रज०—हाँ ऐसी ही थी।

वकील—उस समय यह बाबू कहाँ थे ?

ब्रज०—बड़े कमरेमें।

वकील—क्या कर रहे थे ?

ब्रज०—बातें कर रहे थे।

वकील—किसके साथ बातें कर रहे थे ?

ब्रज०—मेरी माँ और पिताजीके साथ बातें कर रहे थे।

वकीलने चारों ओर देखा। मुक़दमेका रंग पलट गया था। लोग फ़ैसला सुननेके लिए अधीर हो गए और लालचन्दके मुँहका रंग हल्दीकी तरह पीला हो रहा था।

वकील—हाँ तो तुमने माँ और पिताजीसे यह कहा था कि राजी लेटी हुई है, उठती नहीं ?

ब्रज०—हाँ कहा था।

वकील—फिर ?

ब्रज०—माँ मुझे अन्दर ले गई और कहने लगी कि किसीसे यह कहना नहीं।

वकीलने तसल्लीका दम लिया और दूसरा गवाह गाड़ीवाला आया।

वकील—तुम इस बाबूको जानते हो ?

गाड़ी०—हाँ।

वकील—वह कभी तुम्हारी गाड़ीमें बैठे थे ?

गाड़ी०—हाँ, पिछले इतवारको।

वकील—किस समय ?

गाड़ी०—सबेरे दस बजेके समय।

वकील—इनके साथ भी कोई था ?

गाड़ी०—हाँ एक लड़की थी।

वकीलने ब्रजबालाको दिखाकर कहा—क्या वह लड़की यही थी ?

गाड़ीवालेने लड़कीको पहचानकर जवाब दिया—मेरा ख़याल है, यही थी। ठीक ठीक नहीं कह सकता।

यह कहकर वकीलने अदालतका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करके कहा—यह बाबू इतवारको प्रातःकाल लालचन्दके घरपर गया है और डाक्टरी जाँच बतलाती है कि मौत शनिश्चरकी रातको हुई है।

इसके बाद और गवाह पेश हुए और पन्द्रह दिनके बाद मुझे रिहाई मिली।

बाहर आकर मुझे पता लगा कि क़ातिल वास्तवमें लालचन्द है। उसने लड़कीके खोये जानेपर राजीसे पूछा कि लड़की कहाँ है। जब राजीने बतलाया कि लड़की कहीं इधर उधर हो गई है और मुझे उसका ठीक ठीक पता नहीं, तो लालचन्दने समझा कि यह राजीकी शरारत है। इस विचारसे उसे डरानेके लिए पिस्तौल उठाया, परन्तु सहसा पिस्तौल चल गया और राजी मर गई।

जब पति-पत्नी हैरान थे कि अब क्या करना चाहिए, तो मैं वहाँ पहुँचा। मेरे उपकारको तो वे भूल गये, उलटा मुझे फाँसनेकी सोची गई और मैं फँस गया। मगर भोली भाली व्रजबालाने मेरी भलाईका बदला दिया और मुझे फाँसीके तख़्तेसे उतरवा लिया।

थोड़े दिनोंके बाद मैंने एक अख़बारमें पढ़ा कि लालचन्दको चार साल क़ैद की सख़्त सज़ा मिली है।

शिक्षा

१

गोपालदासने बी० ए० की परीक्षा पास की तो थिएटर देखनेका चस्का लग गया। उनका विचार था कि एक साल आराम करके फिर एम० ए० की तय्यारी करेंगे। मगर आरामका सारा समय नाटकोंकी भेंट हो गया। नाटककी दुनिया कुछ ऐसी वस्तु है कि आदमीको पागल कर देती है और उसपर मोहिनी डाल देती है। सुन्दरताकी झूठी तस्वीरें अपनी जादू भरी चितवनके साथ सज-धजकर रंगभूमि (Stage) पर आती है, तो प्रेमियोंके लिए प्रलय हो जाता है। सुन्दरता चलती है तो साथ ही देखनेवाली आँखें, सुननेवाले कान और अनुभव करनेवाले दिल भी चलते और संसार नाचता, गाता, झूमता हुआ नज़र आता है, जैसे संसारमें कोई दुःख नहीं। अगर है, तो देखते देखते सुखमें बदल जाता है। नाटक देखनेवाला अपने आपको भूल जाता है, और कल्पनाशक्तिके

बलसे आकाशमें उड़ने लग जाता है। धीरे धीरे उसकी यह दशा हो जाती है कि दिन-रात उसे नाटकके सपने आने लगते हैं।

विचार दिमाग़से ज़बान पर और ज़बानसे हाथोंपर आ गये। हाथोंने लेखनीको सहायता दी और लेखनीने उन्हें काग़ज़पर बखेर दिया। नाटक तय्यार हुआ तो गोपालदासके गर्व्वका ठिकाना न था। नया बूट पहना, नये मोज़े ट्रंकसे निकाले, और सालभर के बाद पर्दा पहली बार हटाया गया। बालोंको सँवारा, मूँछोंको कौसमटिक लगाई, छड़ी हाथमें ली, और 'दिल फरेब जादू' का मसौदा जेबमें रखकर मि० गोपालदास 'मेटकाफ कम्पनी' के डाइरेक्टरके घरकी ओर रवाना हुए।

मिस्टर एदलजी बड़े व्यवहारज्ञ और समझदार थे। उन्होंने ड्रामा बड़े आदरसे लिया और प्रेमसे पढ़ा। ज्यों ज्यों पढ़ते जाते थे, उनके चेहरेका रंग चमकता जाता था। जब सारा पढ़ चुके, तो बोले—यह आपने लिखा है?

गोपालदासने कहा—जी हाँ, कहिए कैसा रहा?

वे जोशसे बोले—मैं आपको ऐसी बढ़िया चीज़ लिखनेपर बधाई देता हूँ। आप शायद मेरी बातको झूठ समझें, मगर मैंने ऐसा नाटक आज तक नहीं देखा। अहसन और तालिबको भी आप पीछे छोड़ गये।

गोपालदासने सिर झुका लिया—आप मुझे बना तो नहीं रहे हैं?

"बिलकुल नहीं। मैं सच कह रहा हूँ। कहिए, यह ड्रामा आप हमें कितनेको दे सकते हैं?"

"बिना एक कौड़ीके।"

एदलजीने झुक कर सलाम किया और कहा—मैं आपका मशकूर हूँ।

"इसकी ज़रूरत नहीं।"

उन्होंने कृतज्ञताकी दृष्टिसे गोपालदासकी ओर देखकर कहा—मेरी आपसे एक और प्रार्थना है।

गोपालदासने उनकी आँखोंसे आँखें मिलाईं—मिलाकर कहा—

"फ़रमाइए।"

एडलजीने कहा—इस खेलमें आप भी पार्ट करें।

गोपालदासने मंज़ूर कर लिया।

२

रातके तीन बजे थे। वह घर गया तो दिमाग़ आसमानपर था और पैर भूमिपर न पड़ते थे। आज दो सफलतायें थीं। एक तो नाटक पास होनेकी, दूसरी पार्ट अत्यन्त योग्यताके साथ निभानेकी। डाइरेक्टरने ख़ुद बधाई दी थी और आश्चर्यसे कहा था—मिस्टर गोपालदास! आप तो पैदायशी एक्टर और पैदायशी ड्रामाटिस्ट हैं।

उसके पार्टपर बारबार तालियाँ बजाई जातीं और बारबार 'वन्स मोर' की ध्वनि उठती थी। लोग कहते थे, यही सबसे अच्छा एक्टर है।

खेलके बाद उसके सामने यह सवाल था कि क्या वह एक्टर बनना मंजूर कर लें? नाटक देख देखकर मन और बुद्धि दोनों नाटकके पुजारी बन चुके थे। ड्रामा लिखकर और एक रात ऐक्ट करके वह रंग और भी गाढ़ा हो गया। दो सौ रुपया कोई कम वेतन न था। बी० ए० तीस तीस रुपये पर ठोकरें खाते फिरते हैं। सोच विचारके बाद उसने कलम उठाया और तीन सालके लिए एग्रीमेण्ट लिख दिया।

३

सरस्वती सो रही थी। जब गोपालदासने किवाड़ खटखटाया, तो वह बड़बड़ाती हुई उठी और किवाड़ खोलकर कहने लगी—बस, आप तो नाटकके ही हो गये। क्या ये मूए नाटकवाले आपको खानेको भी दे देंगे?

गोपालदासने कहा—शायद दे दें।

सरस्वतीने बिगड़कर कहा—रहने दीजिए, न जाने मेरे भाग्यमें क्या

लिखा है। सवेरे ही आपके पिताजी कहते थे कि दोनों जी किनारा करो। लिखाया, पढ़ाया, ब्याहा, अब घर बैठाकर खानेको कहाँसे दें। पढ़ाईकी लगन हो, तब भी कुछ बात है, परन्तु लड़केके रंग ही बिगड़े हुए हैं। दिन रात नाटकोंमें डूबा रहता है।

गोपालदासने अकड़कर कहा—अगर पिता न देंगे तो क्या हम भूखे मर जायँगे ?

सरस्वतीने सजल नेत्रोंसे उत्तर दिया—'और क्या होगा ?' और वह बिलख बिलखकर रोने लगी।

गोपालदास चुपचाप खड़ा रहा। सरस्वती रो चुकी, तो उसके पास आई और भुजायें गलेमें डालकर बोली—अब तो रोज़ रोज़की यह ज़िल्लत नहीं सही जाती। जितनेकी भी मिले, नौकरी कर लीजिए।

गोपालदासने उसका मुँह चूम लिया और कहा—मैंने नौकरी कर ली।

सरस्वती सन्नाटेमें आ गई—क्या सच ?—कितने रुपयेकी ?

"चार सौ रुपयेकी।"

सरस्वतीकी आँखें चमकने लगीं।

४

पंद्रह बीस दिन इसी तरह बीत गये। घरमें दिन रात बाजा बजने लगा। इससे पहले गोपालदासने कभी बाजेपर हाथ भी नहीं रक्खा था, मगर अब बाजेकी ही शरण लेनी पड़ी। सरस्वती बाजा बजाने और गानेमें निपुण थी। उससे वह सहायता लिया करता था। सरस्वती ड्यूने बनाती थी, गोपालदास गीत तैयार करते थे। और थियेटरमें उनकी इज़्ज़त बढ़ती जाती थी।

एक दिन सरस्वतीने कहा—क्यों न मैं भी नौकरी कर लूँ। गा सकती हूँ, बजा सकती हूँ, चारसौ आपको मिलते हैं, चारसौ मुझे

मिल जायँगे। आठसौ रुपया आयँगे, तो आनन्दसे कटेगी और सुख-चैन बना रहेगा।

गोपालदासने सोचा, बात तो ठीक है। दूसरे दिन बातचीत करते हुए एदलजीके सामने इस विषयकी चर्चा चल पड़ी। उन्होंने कहा—बुलाइए।

सरस्वती आई और एक दो चीज़ें जब गा चुकी, तो एदलजीने कहा—आप इस लाइनमें अवश्य आइए, आपके लिए बड़ा चान्स है।

गोपालदासने कहा—एक शर्त होगी।

"क्या ?"

"मेरे बिना इनको कोई हाथ न लगा सकेगा, और प्रेम-सम्बन्धी पार्ट इनका मेरे साथ रहेगा।

एदलजीका ध्यान किसी और बातपर था। उन्होंने कहा—मुझे मंजूर है।

"इस दशामें मुझे भी मंजूर है।"

सरस्वतीने उत्तर दिया—तब तो मुझे भी मंजूर है।

उस दिनसे सरस्वती भी पार्ट करने लगी। इन दोनोंके कारण कम्पनीकी शोहरत दूर-दूरतक पहुँच गई।

६

मगर अभी चंद ही दिन गुज़रे थे, कि गोपालदासको अपनी भूल मालूम हो गई। सरस्वती रूपवती थी और युवती थी। उसकी मोहिनी वाणीको सुनकर पत्थर-हृदय भी पिघल जाते थे। दर्शक बुत बनकर रह जाते थे। उसका डाइरेक्टरके साथ कौल था कि कोई दूसरा उसके साथ पार्ट न करेगा। मगर फिर भी वह स्टेजपर जाती थी। सैकड़ों आँखें उसके चेहरेपर पड़ती थीं और सैकड़ों दिल उसके प्रेम-पाशमें उलझते थे। वह जब साईडसे निकलकर लोगोंके सामने आती तो तालियोंसे

मण्डप गूँज जाता, और उसके बाद ऐसा सन्नाटा छा जाता था कि सूईतकके गिरनेका शब्द सुनाई देता। वह बोलती और उसका एक एक शब्द लोगोंके हृदयोंको हिला जाता।

गोपालदासको पहले सन्देह हुआ। इसके बाद यह सन्देह विश्वासकी सीमातक जा पहुँचा कि कुछ ऐक्टर उसकी स्त्रीपर मर रहे हैं। कदाचित् वह इसकी भी पर्वाह न करता, मगर यह जानकर कि वे उचित अनुचित उपायोंसे सरस्वतीको वशमें लाना चाहते हैं, उसने स्टेजको नमस्कार की, और सरस्वतीसे भी यह काम छुड़वा दिया। पाँच साल नौकरी कर चुका था। खर्च थोड़ा था, इसलिए लगभग बीस हजार रुपये बैङ्कमें जमा थे। पत्नीसे सलाह करके वह इंग्लैण्ड चला गया और बैरिस्टर बन आया। पति-पत्नी दोनों ही तो थे, मज़ेसे कटने लगी।

६

एक दिन कचहरीसे वापस आकर ज्यों ही उन्होंने घरमें पाँव रक्खा, सरस्वती मुस्कराती हुई आई, और हरे रंगका लिफाफा उसके हाथमें देकर खड़ी हो रही।

गोपालदासने देखते ही समझ लिया कि यह लिफाफा कम्पनीके डाइरेक्टरकी ओरसे है। कचहरीमें उनके नाम भी एक ऐसा ही लिफाफा आया था। महाराज सिकंधीरको आज खेल देखना था, इसलिए इन दोनों नाम निमंत्रण था। खेल भी 'शकुन्तला' का था, इसलिए पब्लिक भी उमड़ कर आनेवाली थी।

गोपालदासने उत्तर दिया—यह क्या बेहूदगी है? हमने स्टेजको छोड़ दिया है। अब हम नहीं जाएँगे।

सरस्वतीने अपना पत्ता फेंका—मिसिज़ एदलजी आई थीं।

गोपालदासने नहले पर दहला मारा—

"तुम भी कभी हो आना।"

"बहुत अच्छा, मैं न जाऊँगी।"

गोपालदासके मनमें पाप था, हँसकर बोला—रूठ तो नहीं गईं ?

"नहीं, इसमें रूठनेकी क्या बात है ?"

७

गोपालदासने मनमें फैसला कर रक्खा था कि एडलजीको नाराज़ करना ठीक नहीं। इसलिए उन्होंने दुष्यन्तके पार्ट करनेकी तय्यारी आरम्भ कर दी थी। साढ़े नौ बजे खेल शुरू होता था, और आठ बजे उनके मित्र सैरके लिए बुलाने आये। एकने कहा—

"मिसिज गोपाल, आपको (मि० गोपालदासको) हम दो बजेसे पहले न लौटने देंगे। इसलिए आप इनकी प्रतीक्षाका कष्ट न उठाएगा।"

सरस्वती चुप रही। वे सब हँसते हुए बाहर निकल गये। गाड़ी तय्यार थी, उसपर सवार हुए। साईसने घोड़ेको हंटर दिखाया और घोड़ा हवासे बातें करने लगा। थोड़े ही समयमें वे थिएटर-हालमें पहुँचकर बातें करने लगे। समय थोड़ा था। गोपालदासने जल्दी जल्दी कपड़े बदले, राजाका लिबास पहना और जब स्टेजकी ओर पैर बढ़ाये तो तालियोंसे कान बहरे हो गये मगर यह क्या ?—सामने सरस्वती खड़ी थी, और शकुन्तलाके वेषमें पौधोंको पानीसे सींच रही थी ! गोपालने उसे देखा, उसने उसको देखा, और दोनोंके सिर लाजसे झुक गये। खेलके अन्दर खेल हो गया। यह अदा स्वाभाविक थी, इसलिए लोगोंने जोरसे चीयर्स दिये। आँखोंने सरगोशियाँ कीं और चितवनने सहायता दी। खेलकी समाप्तिपर जब वे दोनों गाड़ीमें बैठे तो गोपालदासने कहा—सरस्वती ! जो शिक्षा आज मिली है, उसे मैं कभी न भूलूँगा।

राजपूतानीका प्रायश्चित्त

१

कुँवर बीरमदेव कलानौरके राजा हरदेवसिंहके पुत्र थे, तलवारके धनी और पूरे रणवीर। प्रजा उनपर प्राण छिड़कती थी, और पिता देख देखकर फूला न समाता था। बीरमदेव ज्यों ज्यों प्रजाकी दृष्टिमें सर्वप्रिय होते जाते थे उनके सद्गुण बढ़ते जाते थे। प्रातःकाल उठकर स्नान करना, सन्ध्याको देवीके मन्दिरमें चिराग़ जलाना, अनाथोंकी पालना करना, ग़रीबोंको दान देना, यह उनका नित्य-कर्म्म था, जिसमें कभी चूक नहीं होती थी। वे मुस्करा मुस्करा कर बातें करते थे, और चलते चलते राहमें कोई स्त्री मिल जाती, तो आँखें नीचे झुका लेते थे। उनका विवाह नरपुरके राजाकी पुत्री राजवतीसे हुआ था। राजवती केवल देखनेमें ही रूपवती न थी, वह शील और गुणोंमें भी अनुपम थी। जिस तरह बीरमदेवपर मर्द मुग्ध थे, उसी तरह राजवतीपर स्त्रियाँ लट्टू थीं। कलानौरकी प्रजा उनको 'चंद्र सूर्य्यकी जोड़ी' कहा करती थी।

वर्षाके दिन थे, ज़मीनके चप्पे चप्पे परसे सुन्दरता निछावर हो रही थी। वृक्ष हरे भरे थे, नदी नाले उमड़े हुए थे। बीरमदेव सलक़गढ़पर विजय प्राप्त करके प्रफुल्लित मनसे वापस आ रहे थे। सम्राट् अलाउद्दीनने उनके स्वागतके लिए बड़े समारोहसे तैयारियाँ की थीं। शहरके बाज़ार सजे हुए थे। छज्जोंपर स्त्रियाँ थीं। दर्बारके अमीर अगवानीको उपस्थित थे। बीरमदेव उत्फुल्ल वदनसे सलामें लेते और दरबारियोंसे हाथ मिलाते हुए दर्बारमें पहुँचे। उनका तेजस्वी मुखमण्डल और विजयी चाल-ढाल देखकर अलाउद्दीनका हृदय दहल गया, मगर प्रकटमें हँसकर बोला—बीरमदेव, तुम्हारी वीरताने हमारे मनमें घर कर लिया है। इस विजय-पर तुमको बधाई है।

बीरमदेवको इससे प्रसन्नता नहीं हुई। अफ़सोस! यह बात किसी सजातीयके मुखसे निकलती, यह बधाई किसी राजपूतकी ओरसे होती, तो कैसा आनन्द होता! ख़याल आया, मैंने क्या किया? वीरतासे विजय प्राप्त की, परन्तु दूसरेके लिए। युद्धमें विजयी हुआ, परन्तु सिर झुकानेके लिए। इस विचारसे मनमें ग्लानि उत्पन्न हुई। परन्तु आँख ऊँची की तो दर्बारी उनकी ओर ईर्षासे देख रहे थे और आदर सत्कार पाँओंमें बिछ रहा था। बीरमदेवने सिर झुकाकर उत्तर दिया—हुज़ूरकी नवाज़िश है, मैं तो आपका ख़ादिम हूँ।

बादशाहने कहा—नहीं, तुमने दर-असल जवाँमर्दीका काम किया है। हम तुम्हें जागीर देना चाहते हैं।

बीरमदेवने कहा—मेरी एक अर्ज़ है।

"कहो।"

"कैदियोंमें एक नौजवान राजपूत जीतसिंह है, जो पठानोंकी ओरसे हमारे साथ लड़ा था। मैं उसकी बहादुरीपर आशिक हूँ। अगर जहाँपनाह उसे मुझे बख्श दें, तो बड़ी इनायत हो।"

अलाउद्दीनने मुस्कराकर कहा—बहुत अच्छा! माबदौलतने वह

नौजवान तुम्हें बख़्श दिया ।

२

कुछ दिन बाद बीरमदेव कलानौरको वापस लौटे, तो मन उमंगोंसे भरा हुआ था। राजवतीकी भेंटके हर्षमें पिछले दुःख सब भूल गये। तीव्रगति पक्षीकी तरह उमंगोंके आकाशमें उड़े चले जाते थे। मातृभूमिके दर्शन होंगे, जिस मिट्टीसे शरीर बना है, वह फिर आँखोंके सामने होगी, मित्र बन्धु स्वागत करेंगे, बधाइयाँ देंगे, उनके शब्द जिह्वासे नहीं, हृदयसे निकलेंगे, पिता प्रसन्न होंगे, स्त्री द्वारपर खड़ी होगी।

ज्यों ज्यों कलानौर निकट आता जाता था, हृदयकी आग भड़कती जाती थी। स्वदेशका प्रेम हृदयपर जादूका प्रभाव डाल रहा था। मानों पाँओंको मिट्टीकी ज़ंजीर खेंच रही थी। एक पड़ाव बाक़ी था कि बीरमदेवने जीतसिंहसे हँसकर कहा—बताओ आज हमारी स्त्रीका क्या हाल होगा ?

जीतसिंहने यह सुना, तो चौंक पड़ा, और आश्चर्यसे बोला—आप विवाहित हैं क्या ?

बीरमदेवने बेपर्वाहीसे जवाब दिया—हाँ, मेरे ब्याहको पाँच साल बीत गए।

जीतसिंहका चेहरा लाल हो गया। कुछ क्षणोंतक वह चुप रहा, परन्तु फिर न रह सका, क्रोधसे चिल्लाकर बोला—अगर यह बात थी, तो तुमने मेरा सत्यानाश क्यों किया ?

बीरमदेव कल्पनाके जगतमें सुखके महल बना रहे थे। यह सुनकर उनका सुपना टूट गया। घबरा कर बोले—मैंने तुम्हारा सत्यानाश कैसे किया ?

जीतसिंह अकड़कर खड़ा हो गया, और तनकर बोला—समर-भूमिमें तुमने मुझे जीत लिया है, मगर वचन निबाहनेमें तुम मुझसे हार गये हो।

बालपनमें मेरी तुम्हारी प्रतिज्ञा हुई थी। वह प्रतिज्ञा मेरे हृदयमें वैसीकी वैसी बनी हुई है, मगर तुमने अपने पतित हृदयकी तृप्तिके लिए नया बाग और नया फल चुन लिया है। अबसे पहले मैं समझती थी कि मैं तुमसे हार गई परन्तु अब मेरा सिर ऊँचा है। मैं तुमसे कमज़ोर हूँ, तुम मुझसे नीच हो। हारना लज्जाकी बात है, प्यारमें धोखा देना डूब मरनेकी बात है।

बीरमदेव यह वक्तृता सुनकर सन्नाटेमें आ गये, और आश्चर्यसे बोले—तुम कौन हो? मैंने तुमको अभीतक नहीं पहचाना।

जीतसिंह कुछ समयके लिए शान्त रहा और फिर धीरेसे बोला—मैं—मैं सुलक्षणा हूँ।

बीरमदेवकी आँखोंसे पर्दा हट गया। उनको वह गुज़रा हुआ ज़माना याद आ गया, जब वे दिनरात सुलक्षणाके साथ खेलते रहा करते थे। इकट्ठे फूल चुनते, इकट्ठे मन्दिरमें जाते और इकट्ठे पूजा करते थे। चन्द्रदेवकी शुभ्र ज्योत्स्नामें वे एक स्वरसे मधुर गीत गाया करते थे, और प्रेमकी प्रतिज्ञायें किया करते थे। मगर अब वे दिन बीत चुके थे। सुलक्षणा और बीरमदेवके बीचमें एक विशाल नदी लहराती थी।

सुलक्षणाने कहा—प्रेमके बाद दूसरा दर्जा प्रतिकारका है। तुम प्रेमका अमृत पी चुके हो, अब प्रतिकारके विष-पानके लिए अपने होठोंको तय्यार रक्खो।

बीरमदेव उत्तरमें कुछ कहा चाहते थे कि सुलक्षणा क्रोधसे होठ चबाती हुई ख़ेमेसे बाहर निकल गई, और बीरमदेव चुपचाप बैठे रह गये।

दूसरे दिन कलानौरके दुर्गसे घन गर्ज शब्दने नगरवासियोंको सूचना दी कि बीरमदेव आते हैं। स्वागतके लिए तय्यारियाँ करो।

हरदेवसिंहने पुत्रका मस्तक चूमा। राजवती आरतीका थाल लेकर द्वार पर आई कि बीरमदेवने वीरतासे झूमते हुए दरवाजेमें

प्रवेश किया। परन्तु अभी आरती न उतारने पाई थी कि एक बिल्ली टाँगोंके नीचेसे निकल गई, और थाल भूमि पर आ रहा। राजवतीका हृदय धड़क गया, और बीरमदेवको पहले दिनकी घटना याद आ गई।

३

अभी सलफ़गढ़की विजय पुरानी न हुई थी, अभी बीरमदेवकी वीरताका साखा लोगोंको भूलने न पाया था कि कलानौरको अलाउद्दीनके सिपाहियोंने घेर लिया। लोग हैरान थे, परन्तु बीरमदेव जानते थे कि यह आग सुलक्षणाकी लगाई हुई है।

कलानौर यद्यपि साधारण किला था, परन्तु इससे बीरमदेवने मन नहीं हार दिया। सलफगढ़की नूतन विजयसे उनके साहस बढ़े हुए थे। अलाउद्दीन पर उनको असीम क्रोध था। सोचते थे, मैंने उनकी कितनी सेवा की, इतनी दूरकी कठिन यात्रा करके पठानोंसे किला छीन कर दिया, अपने प्राणोंके समान प्यारे राजपूतोंका खून पानीकी तरह बहा दिया और उसके बदलेमें, जागीरके स्थानमें, यह अपमान, यह हमला यह संग्राम इनाममें मिला।

मगर राजवतीको सलफगढ़की विजय और बीरमदेवके आगमनसे इतनी खुशी न हुई थी, जितनी आज हुई। आज उसकी आँखोंमें आनन्दकी झलक थी, और चेहरे पर अभिमान तथा गौरवका रंग। बीरमदेव भूले हुए थे, अलाउद्दीनने उनकी आँखें खोल दी हैं। पराधीनताकी विजयसे स्वाधीनताकी हार हजार गुना अच्छी है। पहले उसे ग्लानियुक्त प्रसन्नता थी अब हर्षयुत भय। पहले उसका मन रोता था, आँखें छिपाती थीं। आज उसका हृदय हँसता था, आँखें मुस्करातीं थीं। वह अठलाती हुई पतिके सामने गई और बोली—क्या इरादा है?

बीरमदेव जोश और क्रोधसे दीवाने हो रहे थे, झल्लाकर बोले—मैं अल्लाउद्दीनके दाँत खट्टे कर दूँगा।

राजवतीने कहा—जीवननाथ, आज मेरे उजड़े हुए हृदयमें आनन्द-की नदी उमड़ी हुई है।

"क्यों ?"

"क्योंकि आज आप आज़ाद राजपूतोंके समान बोल रहे हैं। आज आप वे नहीं हैं, जो पन्द्रह दिन पहले थे। उस समय में और आजमें ज़मीन आसमान का फ़र्क़ है। उस दिन आप पराधीन वेतनग्राही थे, आज आज़ाद सिपाही हैं। उस दिन आप शाही प्रसन्नताके भूखे थे, आज आनके परवाने हैं। उस दिन आपको सुख-सम्पत्तिकी प्यास थी, आज इज्जतकी धुन है। उस समय आप नीचे जा रहे थे, आज आप ऊपर उठ रहे हैं।"

राजवतीके यह गौरव भरे शब्द सुनकर वीरमदेव उछल पड़े और राजवतीको गले लगाकर बोले—राजवती, तुमने मेरे मनमें बिजली भर दी है। तुम्हारे ये शब्द युद्ध-क्षेत्रमें मेरे मनको उत्साह दिलाते हुए मुझे लड़ायँगे। दुर्ग तुम्हारे हवाले है।

रणभेरीपर चोट पड़ी, राजपूतोंके दिल खिल गये। माताओंने पुत्रोंको हँसते हुए बिदा किया। बहनोंने भाइयोंको तलवारें बाँधीं। स्त्रियाँ पतियोंसे हँस हँसकर गले मिलीं, मगर मनमें व्याकुलता भरी हुई थी—कौन जाने फिर मिलाप हो या न हो ?

क़िलेसे कुछ फासले पर नदी बहती थी। राजपूत उसके तटपर डट गये। सेनापतिकी राय थी कि हमको नदीके इस पार रहकर शाही सेनाको पार होनेसे रोकना चाहिए, परन्तु वीरमदेव जोशमें पागल हो रहे थे, उन्होंने कहा—"हम नदीके उसपार जाकर शाही सेनासे युद्ध करेंगे, और साबित कर देंगे कि राजपूतोंका बाहुबल शाही सेनाकी भी परवाह नहीं करता।"

राजपूतोंने महादेवकी जयके जयकारे बोलते हुए नदीको पार किया और वे शाही सेनासे जुट गए। राजपूत शाही सेनासे थोड़े थे, मगर उनके

हौसले बढ़े हुए थे। हरएक हल्लेमें शाही सेनाके सैकड़ों सिपाही कटते जाते थे, और राजपूत बराबर आगे बढ़ रहे थे। ऐसा मालूम होता था, जैसे शाही सेनापर राजपूतोंकी निर्भीकता और वीरताने जादू कर दिया है। मगर यह हालत ज़्यादा समय तक न रही। शाही सेना राजपूतोंकी अपेक्षा कई गुना अधिक थी, इसलिए संध्या होते होते पाँसा पलट गया। राजपूतोंको नदीके इस पार आना पड़ा।

इससे बीरमदेवको मलाल हुआ। उन्होंने रातको एक ओजस्विनी वक्तृता दी, और राजपूतोंके पूर्वजोंके साखे सुना सुनाकर उनको उत्तेजित किया। इसका परिणाम यह हुआ कि राजपूतोंने बिफरे हुए सिंहोंकी तरह तैरकर दूसरे दिन नदी पार करनेकी प्रतिज्ञा की। मगर आदमी कुछ सोचता है, परमात्माकी इच्छा कुछ और होती है। इधर यह विचार हो रहा था उधर मुसलमान भी गाफ़िल न थे। उन्होंने कलमा पढ़कर क़समें खाईं थीं कि मरते मर जायँगे, पीठ न दिखायँगे। मुट्ठीभर राजपूतोंसे हारना सख़्त बुज़दिली है। लोग क्या कहेंगे? यह 'लोग क्या कहेंगे' का भय लोगोंसे बहुत कुछ करवा देता है।

४

दिन चढ़ा तो लड़ाके वीर फिर आमने सामने हुए, और लोहेसे लोहा बजने लगा। बीरमदेवकी तलवार ग़ज़ब ढा रही थी। वे जिधर झुकते थे, परेके परे साफ कर देते थे। उनकी रणदक्षतासे राजपूत सेना प्रसन्न हो रही थी, परन्तु मुसलमानोंके हृदय बैठे जाते थे। यह आदमी है या देव है; जो न मृत्युसे डरता है, न घावोंसे घबराता है। जिधर झुकता है, विजय-लक्ष्मी फूलोंकी वर्षा करती है। जिधर जाता है, सफलता साथ जाती है। इससे युद्ध करना लोहेके चने चबाना है। शाही सेना नदीके दूसरे पार चली गई।

बीरमदेवने राजपूतोंके बढ़े हुए दिल देखे, तो ख़ुश हो गये।

सिपाहियोंसे कहा, मेरे पीछे पीछे आ जाओ, और आप घोड़ा नदीमें डाल दिया। इस साहस और वीरतापर मुसलमान दंग रह गए; मगर अभी उनकी हैरानी कम न हुई थी, कि राजपूत किनारेपर आ गए, और संग्राम आरम्भ हो गया। मुसलमान सेना लड़ती थी रोटीके लिए, उसके पैर उखड़ गए। राजपूत लड़ते थे मातृभूमिके लिए, उनकी जीत हुई। शाही सेनामें भगदड़ मच गई, सिपाही समरभूमि छोड़ने लगे। बीरमदेवके सिपाहियोंने पीछा करना चाहा, मगर बीरमदेवने यह कहकर रोक दिया कि भागते शत्रुपर आक्रमण करना वीरता नहीं पाप है। और जो यह नीच कर्म्म करेगा, मैं उसका मुँह न देखूँगा।

विजयी सेना कलानौरमें वापस आई। स्त्रियोंने उनपर फूल बरसाये, लोगोंने रातको दीप-माला की। राजवतीने मुस्कराती हुई आँखोंसे बीरमदेवका स्वागत किया, और उनके गलेमें विजयमाला डाली। बीरमदेवने राजवतीको गले लगा लिया और कहा—यह जीत मेरी नहीं तुम्हारी है।

६

इस हारने अलाउद्दीनके दिलकी भड़कती हुई आगपर तेलका काम किया। उसने चारों ओरसे सेना जमा की, और चालीस हजार सिपाहियोंसे कलानौरको घेर लिया। बीरमदेव अब मैदानमें निकलकर लड़ना नीति-विरुद्ध समझ क़िलेमें ठहरे रहे।

क़िला मज़बूत और ऊँचा था। उसमें प्रवेश करना आसान न था। शाही सेनाने पड़ाव डाल दिया, और खाना-पानी समाप्त होनेकी प्रतीक्षा करने लगी।

सात महीने गुज़र गये, शाही सेना उसी तरह घेरा डाले पड़ी रही। दुर्गमें रसद घटने लगी। बीरमदेवने एक दिन राजवतीसे कहा—कहो, अब क्या होगा?

राजवती बोली—क्या बताऊँ। मुझे तो कोई रास्ता नज़र नहीं आता।

बीरमदेवने उत्तर दिया—शाही सेना ज्यादा है। उसको जीतना आसान नहीं। मगर यह सब युद्ध मेरे लिए है, गेंहूँके साथ घुन भी पिसेंगे, यह क्यों ?

राजवतीने आश्चर्यसे सिर उठाया, और कहा—यह क्या जीवननाथ ! क्या शाही सेना आपको पाकर दुर्गकी ईंटसे ईंट न बजा देगी ?

बीरमदेवने ठण्डी साँस भरी, और कहा—नहीं, अलाउद्दीन कलानौर नहीं, मुझे चाहता है।

"और अगर वह आपको पा ले, तो क़िलेपर अधिकार न जमायगा?"

"यह नहीं कहा जा सकता। हाँ, अगर मैं अपने आपको शाही सेनाके हवाले कर दूँ, तो हो सकता है, वह सेना हटा ले।"

राजवतीने मुँहसे कुछ न कहा, मगर वह दिलमें सोच रही थी, कि अगर यह बात है, तो फिर लड़ाई क्यों ?

बीरमदेवने कहा—प्रिये, तुम राजपूतानी हो ?

"हाँ।"

"राजपूत मरने मारनेको तैयार रहते हैं ?"

"हाँ।"

"अपने देशपर प्राण निछावर कर सकते हैं ?"

"हाँ।"

"क्या तुम अपनी वीरताकी परीक्षा देनेके लिए तैयार हो ?"

राजवतीने सन्देहभरी दृष्टिसे पतिकी ओर देखा, और धीरेसे कहा—तैयार हूँ।

बीरमदेवने कुछ देर सोचकर कहा—इस युद्धको समाप्त करना तुम्हारे हाथमें है।

राजवती समझ न सकी कि पतिका क्या मतलब है। चकित-सी होकर बोली—"मेरे हाथमें ?"

"तुम्हें अपनी सबसे प्यारी चीज़ क़ुरबान करनी होगी।"

"वह क्या ?"

"मुझे गिरिफ्तार करा दो, लोग बच जायँगे।"

राजवतीका कलेजा हिल गया। रोकर बोली—प्राणनाथ, मेरा मन कैसे मानेगा ?

"मनाओगी तो मान जाएगा।"

राजवतीने सजल आँखोंसे पतिकी तरफ़ देखा, और कहा—आपकी इच्छा सिर आँखोंपर, मगर यह बोझ असह्य है।

बीरमदेवने खुश होकर राजवतीको गले लगा लिया, और हँसते हुए बाहर चल गए। राजवती भूमिपर लेटकर रोने लगी।

दो घण्टेके बाद किलेमें एक तीर गिरा, जिसके साथ एक काग़ज़ लिपटा हुआ था। हरदेवसिंहने खोल कर देखा। लिखा था—हम सिवाय बीरमदेवके कुछ नहीं चाहते। उसे पाकर हम घेरा हटा लेंगे।

यह पढ़कर हरदेवसिंहका हृदय सूख गया। बीरमदेवको बुलाकर बोले—क्या तुमने मुसलमान सेनाको कोई ख़त भेजा था ?

"हाँ, क्या उत्तर आया है ?"

हरदेवसिंहने कागज बीरमदेवको दे दिया, और वे फूट फूट कर रोने लगे। रोते रोते बोले—बेटा, यह क्या ? तुमने यह क्या संकल्प किया है ? अपनेको गिरिफ्तार करा दोगे ?

बीरमदेवने जवाब दिया—पिताजी, यह सब कुछ केवल मेरे लिए है। अगर आनका सवाल होता, किलेकी रक्षाका सवाल होता, तो बच्चा बच्चा न्योछावर हो जाता, मुझे परवाह न थी। मगर अब कैसे चुप रहूँ, यह सब रक्तपात केवल मेरे लिए है। यह नहीं सहा जाता।"

उस रातके अन्धकारमें किलेका फाटक खुला, और बीरमदेवने अपने आपको मुसलमान सेनापतिके हवाले कर दिया। प्रातःकाल सेनाने किलेका घेरा हटा लिया।

६

स्त्रीका दिल भी अजीब चीज़ है। वह आज प्यार करता है, कल दुत्कार देता है। प्यारकी खातिर स्त्री सब कुछ करनेको तय्यार हो जाती है, परन्तु प्रतिकारके लिए उससे भी ज्यादा कर सकती है।

सुलक्षणा असाधारण स्त्री थी। उसके हृदयमें बचपनसे बीरमदेवकी मूर्ति विराज रही थी। उसे प्राप्त करनेके लिए वह पुरुषके वेशमें पठानोंके साथ मिलकर बीरमदेवकी सेनासे लड़ी, और इस वीरतासे लड़ी, कि बीरमदेव उसपर मुग्ध हो गये। मगर जब उसे यह पता लगा, कि मेरा सपना भंग हो गया है, तो वह क्रोधके बसमें होकर वह करनेको तैयार हो गई, जो हर स्त्री नहीं कर सकती। अनेक यत्नोंके बाद वह अलाउद्दीन-के पास पहुँची। अलाउद्दीनपर जादू हो गया। सुलक्षणा सुन्दरी थी। अलाउद्दीन रसिक था; प्रेम-कटारी चल गई। सुलक्षणाने जब देखा कि अलाउद्दीन वशमें है, तो उसने कहा कि अगर आप बीरमदेवका सिर मुझे मँगवा दें तो मैं आपको और आपके दीनको स्वीकार कर लूँगी। अलाउद्दीनने इसे मंजूर कर लिया, और सुलक्षणाके निवासके लिए अलग महल खाली करा दिया।

आठ महीने बाद सुलक्षणाके पास पैग़ाम पहुँचा कि कल प्रातःकाल बीरमदेवका सिर तुम्हारे पास पहुँच जायगा। सुलक्षणाने शान्तिका साँस लिया। अब प्रेमकी प्यास बुझ गई। जिसने मुझे तुच्छ समझकर ठुकराया था, मैं उसके सिरको ठोकर मारूँगी। वीरमदेवने मुझे कमज़ोर स्त्री समझा, परन्तु यह विचार न किया कि स्त्री देश-भरका नाश कर सकती है। प्रेम भयानक है, मगर क्रोध उससे भी भयानक है। मगर यह हँसी न थी, रोनेसे पहले रोना रोकनेकी आखिरी कोशिश थी।

विचार आया, मरनेसे पहले एक बार उसे देखना चाहिए। वह इस दुर्दशापर लज्जित होगा। सहायताके लिए प्रार्थना करेगा। मैं गौरवसे

सिर उठाऊँगी। वह पृथ्वीमें गड़ता जायगा। मेरी ओर देखेगा, मगर करुणदृष्टिसे। उस दृष्टिपर खिलखिलाकर हँस देनेपर उसे अपनी और मेरी अवस्थाका ज्ञान हो जायगा।

इतनेमें बादशाह सलामत आए। सुलक्षणाके मनकी इच्छा पूरी हुई। कूँआ प्यासेके पास आया। बादशाहने देखा, सुलक्षणा सादी पोशाकमें है। इसपर भी सुन्दरता उससे फूट फूटकर निकल रही है। हँसकर बोला—सादगीके आलममें यह हाल है, तो ज़ेवर पहनकर बिलकुल ही ग़ज़ब हो जायगा। कहो तबीयत कैसी है?

सुलक्षणाने लजाकर उत्तर दिया—जी हाँ, परमात्माकी कृपासे अच्छी है।

"तुम्हारी चीज़ कल सुबह तुम्हारे पास पहुँच जायगी।"

"मैं बहुत कृतज्ञ हूँ, मगर एक अर्ज है, उम्मीद है आप मंजूर करेंगे।"

अलाउद्दीनने सुलक्षणाके चेहरेकी ओर देखते हुए कहा—क्या हुक्म है?

"मैं बीरमदेवसे एक बार मिलना चाहती हूँ। प्रातःकालसे पहले एक बार उससे भेंट करनेकी इच्छा है।"

अलाउद्दीनने सोचा, चिड़िया जालमें फँस चुकी है, जाती कहाँ है! बीरमदेवको चिढ़ाना चाहती है, इसमें हर्जकी बात नहीं। यह सोचकर उसने कहा—"तुम्हारी बात मंजूर है, लेकिन अब निकाह जल्द हो जाना चाहिए।"

सुलक्षणाने उत्तर दिया—घबराइए नहीं, अब दो चार दिनकी ही बात है।

बादशाहने अँगूठी सुलक्षणाको देकर कहा कि इसे दारोगाको दिखाकर बीरमदेवसे मिल लेना और आप प्रसन्न होते हुए, महलको चला गया।

७

सुलक्षणाने नया लिबास पहना, माँग मोतियोंसे भरवाई, ज़ेवर सजाए और शीशेके सामने जा खड़ी हुई। उसने अपना रूप हज़ारों बार देखा था, परन्तु आज वह परी प्रतीत होती थी। कमरेमें बहुत-सी सुन्दर मूर्तियाँ थी, एक एक करके सबके साथ उसने अपनी तुलना की, मगर हृदयमें एक भी न जमी। अभिमान सौन्दर्य्यका कटाक्ष है। सुलक्षणा अपने रूपके मदमें आप झूमने लगी।

कहते हैं, सुन्दरता जादू है, और उससे पशु भी वशमें हो जाते हैं। सुलक्षणाने सोचा, क्या बीरमदेवके दिल नहीं है? अगर है तो क्या वह मुझे देखकर फड़क न उठेगा? अपनी की हुई उपेक्षाओंके लिए पश्चात्ताप न करेगा? प्रेम सब कुछ सह लेता है, मगर बेपरवाही नहीं सह सकता। इतनेमें दूसरा विचार हुआ। यह क्या? अब प्रेमका समय बीत चुका, बदलेका समय आया है। बीरमदेवका दोष मामूली नहीं है। उसे उसकी भूल सुझानी चाहिए। यह शृङ्गार किसके लिये है? मैं बीरमदेवके घावोंपर निमक छिड़कने चली हूँ, उसे अपना रूप दिखाने नहीं चली।

यह सोचकर उसने अपने शाही कपड़े उतार दिये, और बीरमदेवको जलानेके लिए मुसलमानी पोशाक पहनकर पालकीमें बैठ गई।

रातका समय था, आसमानमें तारे जगमगा रहे थे। सुलक्षणा बुरका पहने हुए कैदखानेके दरवाजेपर गई और बोली—दारोग़ा कहाँ है?

सिपाहियोंने कहारोंके साथ शाही कर्मचारी देखकर आदरसे उत्तर दिया—हम उन्हें अभी बुला लाते हैं।

सुलक्षणाने नर्मीसे कहा—इसकी जरूरत नहीं। मैं बीरमदेवसे मिलूँगी। क़ैदखानेका दरवाजा खोल दो।

सिपाही बोले—यह हमारी ताक़तसे बाहर है।

सुलक्षणाने कड़ककर कहा—हुक्म मानो। तुम रानी सुलक्षणाकी आज्ञा सुन रहे हो। यह देखो शाही अँगूठी है।

रानी सुलक्षणाका नाम राजधानीके बच्चे बच्चेकी जबानपर था। कोई उसके गोरे रंगका प्रशंसक था, कोई रसीले नयनोंका, कोई गुलाबसे गालोंका, कोई पँखड़ियोंसे होठोंका। जबसे उसने अलाउद्दीनपर जादू किया था, तबसे उसकी सुन्दरताकी ख़याली कहानियाँ घर-घरमें मशहूर हो रही थीं। उसे किसीने नहीं देखा, मगर फिर भी कोई न था, जो इस बातकी डींग मारकर मित्रोंमें प्रसन्न न होता हो कि उसने सुलक्षणाको देखा है।

सिपाहियोंने सुलक्षणाका नाम सुना और शाही अँगूठी देखी, तो उनके प्राण सूख गये। काँपते हुए बोले—जो हुक्म हो, हम हाजिर हैं। यह कहकर उन्होंने क़ैदखानेका दरवाज़ा खोल दिया और दीपक लेकर उस कोठड़ीकी ओर रवाना हुए, जिसमें अभागा बीरमदेव अपने जीवनकी अन्तिम घड़ियाँ गिन रहा था। सुलक्षणाके पैर लड़खड़ाने लगे। अब वह सामने होगा। जिसकी कभी मनमें आराधना किया करती थी, आज उसे वधकी आज्ञा सुनाने चली हूँ।

सिपाहियोंने धुँधला-सा दीपक दीवट पर रख दिया, और आप दरवाज़ा बन्द करके बाहर चले गए। सुलक्षणाने देखा, बीरमदेव फ़र्शपर बैठा है, और मृत्युकी प्रतीक्षा कर रहा है। सुलक्षणाके हृदयपर चोट पहुँची। यह राजपूत-कुल-भूषण है, और धर्मपर स्थिर रहकर जातिपर न्यौछावर हो रहा है। मैं भ्रष्ट होकर अपनी जातिके एक हीरेके प्राण ले रही हूँ। यह मर जायगा, तो स्वर्गके द्वार इसके स्वागतके लिए खुल जायँगे। मैं ज़िन्दा रहूँगी, मगर नरकके पथमें नीचे उतरती जाऊँगी। इसके नामपर लोग श्रद्धाके फूल चढ़ायँगे, मेरे नामपर सदा धिक्कार पड़ेगी। यह मैंने क्या कर दिया? जिससे प्रेम करती थी,

जिसके नामकी माला जपती थी, जिसकी मूर्ति मेरे मनकी शोभा थी, जिसके सपने देखती थी, उसे आप कहकर मरवाने चली हूँ! जिस सिरको अपना ताज समझती थी, उसे आँखोंसे कटा हुआ कैसे देखेंगी? सुलक्षणा-की आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह निकली। प्रेमकी दबी हुई आग भड़क उठी। सोया हुआ स्नेह जाग पड़ा। हृदयमें पहला प्रेम लहराने लगा। नेत्रोंमें पहला प्रेम झलकने लगा। सुलक्षणाकी नींद खुल गई।

सुलक्षणा मज़बूत पैरोंसे आगे बढ़ी, मगर हृदय काँपने लगा। पैर आगे रखती थी, परन्तु मन पीछे रहता था। बीरमदेवने सिर उठाकर देखा, तो अचम्भेमें आ गये और आश्चर्यसे बोले—सुलक्षणा! यह क्या? क्या तुम्हारा क्रोध, धर्म, न्याय और जातिका रुधिर पान करके भी तृप्त नहीं हुआ, जो ऐसी अँधेरी रातमें यहाँ आई हो?

सुलक्षणाकी आँखोंसे आँसुओंका फ़व्वारा उछल पड़ा परन्तु वह पी गई। उसे आज मालूम हुआ कि मैं कितनी पतित हो गई हूँ, सँभलकर बोली—नहीं, अभी मन शान्त नहीं हुआ।

"क्या माँगती हो? कहो, मैं देनेको तैयार हूँ।"

"इसीसे यहाँ आई हूँ, मेरे घावका मरहम तुम्हारे पास है।"

बीरमदेवने समझा, मेरा सिर लेने आई है। सुनकर बोले—मरहम यहाँ कहाँ है, मैं तो स्वयं घाव बन रहा हूँ, मगर तुम जो कहोगी, उसको देनेमें पीछे न रहूँगा।

सुलक्षणाने अपना मुंह दोनों हाथोंसे ढँक लिया, और फूट फूटकर रोने लगी। रोनेके बाद हाथ जोड़कर बोली—तुमने एक बार मेरा मन तोड़ा है, अब दूसरी बार न तोड़ना।

बीरमदेवको आश्चर्य हुआ। उन्होंने मनमें सोचा, हो न हो, यह अपने किये पर लज्जित हो रही है, और बचावका उपाय ढूँढ़ती है। आश्चर्य नहीं, मुझसे क्षमा माँगती हो। गम्भीरतासे पूछा—क्या कहती हो?

सुलक्षणाने विनती करके कहा—मेरे कपड़े पहनो, और यहाँसे निकल जाओ।

बीरमदेवने घृणासे मुँह फेर लिया, और कहा—मैं राजपूत हूँ।

सुलक्षणाने रोकर उत्तर दिया—तुम मेरे कारण इस विपत्तिमें फँसे हो। जब तक मैं खुद तुमको यहाँसे न निकाल दूँगी, तबतक मेरे मनको शान्ति न होगी। तुमने मेरे घावपर मरहम रखनेकी प्रतिज्ञा की है। राजपूत प्रतिज्ञा भंग नहीं करते। देखो इन्कार न करो, सिर न हिलाओ। मैंने पाप किया है, उसका प्रायश्चित्त करने दो।

स्त्रीका अन्तिम शस्त्र रोना है। जहाँ सब यत्न व्यर्थ हो जाते हैं, वहाँ यह युक्ति सफल होती है। सुलक्षणाको रोते हुए देख कर बीरमदेव नर्म हो गये, और धीरेसे बोले—इसमें दो बातें हैं। पहली तो यह कि तुम मुसलमान हो चुकी हो। यह कपड़े मैं नहीं पहन सकता। दूसरे मैं निकल गया, तो तुम्हारा क्या हाल होगा?"

सुलक्षणाने उत्तर दिया—मैं अभीतक अपने धर्मपर स्थिर हूँ। यह वस्त्र तुम्हारे जलानेके लिए पहने थे, परन्तु अब अपने कियेपर लज्जित हूँ। इसलिए तुम्हें यह शंका न होनी चाहिए।

"और दूसरी बात?"

"मुझे जरा भी तकलीफ़ न होगी। मैं सहजमें ही प्रातःकाल छूट जाऊँगी।"

सुलक्षणाने झूठ बोला, मगर यह झूठ अपने लिए नहीं, दूसरेके लिए था। यह पाप था, मगर ऐसा पाप जिसपर सैकड़ों पुण्य निछावर किये जा सकते हैं। बीरमदेवको विवश होकर उसके प्रस्तावको मानना पड़ा। जब उन्होंने वस्त्र बदल लिये, तो सुलक्षणाने शाही अँगूठी उनको देकर कहा—अगर कोई रोके, तो यह अँगूठी दिखा देना।

बीरमदेव बुरका पहनकर बाहर निकले। सुलक्षणाने सुख-शान्तिका

साँस लिया। वह पिशाचिनीसे देवी बनी। बुराई और भलाईमें एक ही क़दमका फ़र्क़ है।

८

सुलक्षणाकी आँखें अब खुलीं, और उसे मालूम हुआ कि मैं क्या करने लगी थी, कैसा घोर पाप, कैसा अत्याचार! राजपूतोंके नामको कलङ्क लग जाता। आर्य स्त्रियोंका गौरव मिट जाता। सीता रुक्मिणीकी आन जाती रहती। क्या प्रेमका परिणाम धर्म-कर्मका विनाश है? क्या जो प्रेम करता है, वह हत्या भी कर सकता है? क्या जिसके मनमें प्रेमके फूल खिलते हैं, वहाँ उजाड़ भी हो सकती है? क्या जहाँ प्रीतिकी चाँदनी खिलती है, जहाँ आत्म-बलिदानके तारे चमकते हैं, वहाँ अंधकार भी हो सकता है? जहाँ स्नेहकी गंगा बहती है, जहाँ स्वार्थत्यागकी तरंगें उठती हैं, वहाँ रक्तकी प्यास भी रह सकती है? जहाँ अमृत हो, वहाँ विषकी क्या जरूरत है? जहाँ माधुर्य हो, वहाँ कटुताका निवास क्यों कर? स्त्री प्रेम करती है, सुख देनेके लिए। मैंने प्रेम किया, सुख लेनेके लिए। प्रकृतिके प्रतिकूल कौन चल सकता है? मेरे भाग्य फूट गये। मगर जिनसे मेरा प्रेम है उनका बाल क्यों बाँका हो? प्रेमका मार्ग विकट है, इसपर चलना किसी किसीका काम है। जो अपने प्राणोंको हथेलीपर रख ले, वही प्रेमका अधिकारी है। जो संसारके कठिनसे कठिन काम करनेको उद्यत हो, वही प्रेमका अधिकारी है। प्रेम बलिदान सिखाता है, हिसाब नहीं सिखाता। प्रेम दिमागको नहीं दिलको छूता है। मैंने प्रेमपथपर पैर रक्खा, फल मुझे मिलना चाहिए। बीरमदेवने ब्याह किया, पति बना, बाप हुआ, अब उसको पहले प्रेमकी बातें सुनाना, मूर्खता नहीं तो और क्या है? मैंने पाप किया है, उसका प्रायश्चित्त करूँगी। रोगकी ओषधि कड़वी होती है।

इतनेमें क़ैदखानेका दरवाजा खुला। पिछले पहरका समय था। आकाशसे तारे लोप हो गये थे। क़ैदखानेका दीपक बुझ गया, और कमरेमें सुलक्षणाके निराश हृदयके समान अंधकार छा गया। जल्लाद धीरे धीरे पैर रखता हुआ कैदखानेमें घुसा। सुलक्षणा समझ गई, प्रायश्चित्तका समय आ गया है। उसने कंबलको लपेट लिया और चुपचाप लेट गई। जल्लादके हाथमें दीपक था, उसने उसे ऊँचा करके देखा, क़ैदी सो रहा है।

जल्लाद धीरे धीरे आगे बढ़ा, और सुलक्षणाके पास बैठ गया। उसने कंबल सरकाकर उसका गला नंगा किया, और उसपर छुरी फेर दी। सुलक्षणाने अपने खूनसे प्रायश्चित्त किया। आप मर गई, मगर अपने हृदयेश्वरको बचा लिया। जिसके रुधिरकी प्यासी हो रही थी, जिसकी मृत्युपर आनन्द मनाना चाहती थी, उसकी रक्षाके लिए सुलक्षणाने अपना जीवन न्योछावर कर दिया! प्रेमके खेल निराले हैं।

पिछले पहरका समय था। उषःकालकी पहली रेखा आकाशपर फूट पड़ी थी। जल्लाद सिरको कपड़े से लपेटे हुए अलाउद्दीनके पास पहुँचा, और झुककर बोला—बीरमदेवका सिर हाज़िर है।

अलाउद्दीनने कहा—कपड़ा हटाओ।

जल्लादने कपड़ा हटाया। एकाएक बिजली सी कौंद गई। अलाउद्दीन कुर्सीसे उछल पड़ा। यह बीरमदेवका नहीं, सुलक्षणाका सिर था। अलाउद्दीन तलमलाकर खड़ा हो गया। कितने दिनों बाद उम्मीदकी हरीभरी भूमि सामने आई थी, मगर देखते ही देखते निराशामें बदल गई। राजपूतानीके प्रतिकारका कैसा हृदय-वेधक दृश्य था! प्रेमजालमें फँसी हुई हिन्दू स्त्रीका प्रभावपूर्ण बलिदान, पतित होनेवाले आत्माका पश्चात्ताप!

यह ख़बर कलानौर पहुँची, तो बीरमदेव कई दिन तक रोते रहे। राजवती समझती थी, मेरा सुहाग सुलक्षणा ने ही बचाया है, इसलिए

उसने सुलक्षणाकी स्मृतिमें एक शानदार मंदिर बनवाया। आज न बीरमदेव बाकी हैं, न राजवती। मगर वह मंदिर आज भी उसी तरह खड़ा है, और उसके पुजारी राजपूतानीके प्रायश्चित्तकी अमर कहानी आज भी लोगोंको सुनाते हैं और उनसे इनाम लेते हैं।

श्रीसुदर्शन की दूसरी रचनायें

कहानियाँ

चार कहानियाँ	...	...	१)
पनघट	...	...	१॥)
सुदर्शन-सुधा	...	...	२)
सुदर्शन-सुमन	...	...	२)
तीर्थयात्रा	...	...	२)
परिवर्त्तन	...	...	॥)
सुप्रभात	...	...	१॥)

नाटक

अंजना	...	...	१=)
भाग्यचक्र	...	...	१)
आनरेरी मजिस्ट्रेट	...	...	॥=)

बाल-साहित्य

सोहराब रुस्तम	..	...	॥)
राजकुमार सागर	...	...	॥)
बच्चों का हितोपदेश	...	...	॥)
अँगूठी का मुकदमा	...	...	॥)
सात कहानियाँ	...	...	।–)
फूलवती ...	...	...	॥)

संकलन

गल्प-मंजरी	...	...	२)
हिन्दुस्तानी गद्य पद्य संग्रह	...	...	१)

गीत

झंकार	...	...	॥)